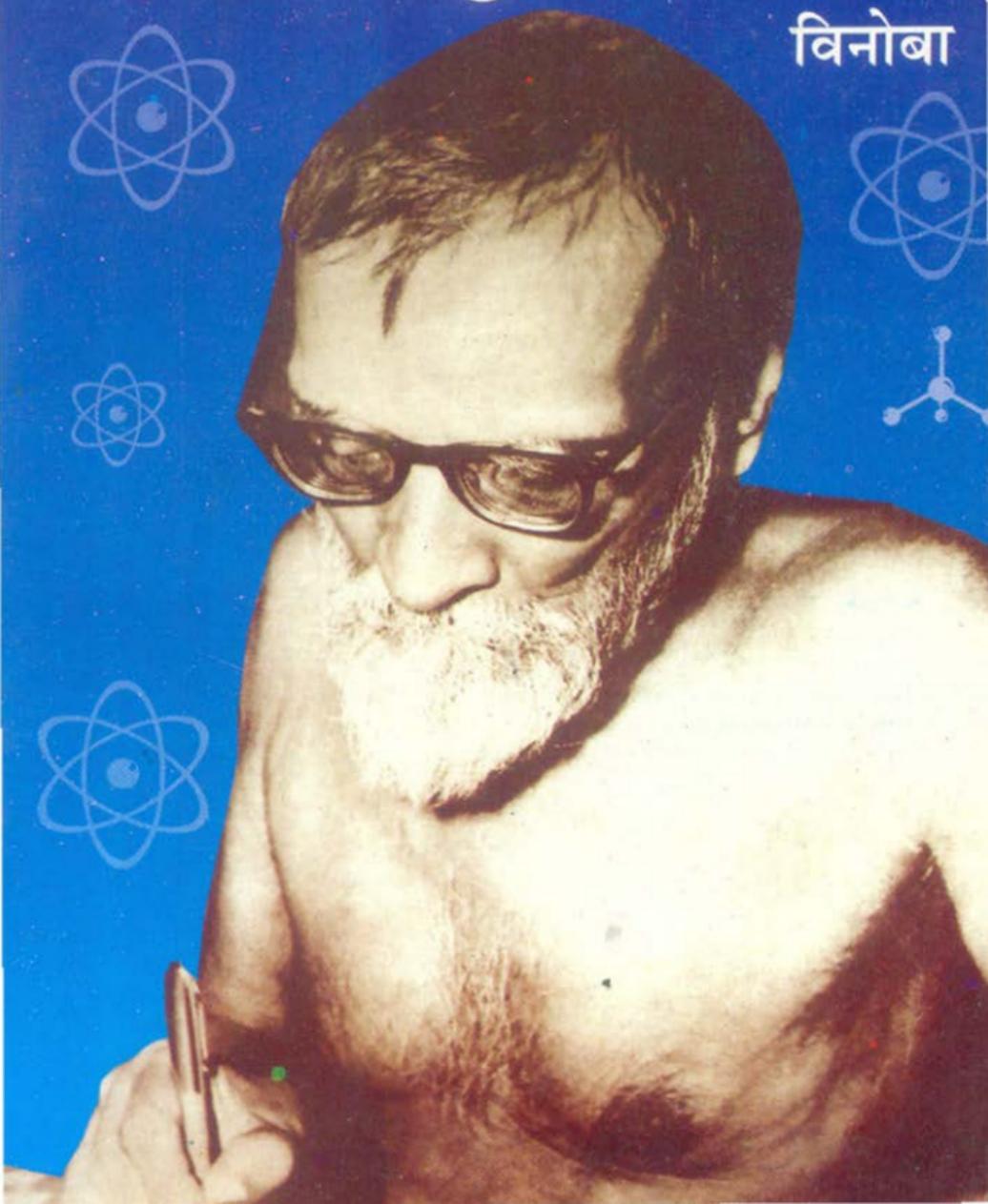


विज्ञान युग में धर्म

विनोबा





विज्ञान-युग में धर्म

विनोबा

सम्पादक

बाल विजय

प्रकाशक

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

एन-७७, पहली मंजिल, कनॉट सर्कस; नई दिल्ली ११०००१

फोन: ०५४२-२४४०२२३ | ई-मेल: sastasahityamandal@gmail.com

वेबसाइट: www.sastasahityamandal.org



प्रकाशकीय

धर्म की चर्चा तो बहुत सुनायी देती है, लेकिन धर्म के बारे में समझ बहुत कम पायी जाती है। धर्म-सम्बन्धी चर्चा में प्रायः आवेश या अभिनिवेश, अतिशय भावपूर्ण लगाव या अलगाव, पक्षपात या पूर्वाग्रह प्रायः देखने-सुनने को मिलते हैं। परिणामस्वरूप धर्म के बारे में स्वस्थ और शांत चित्त से, समग्ररूप में, समत्वयुक्त विचार कम होता है। इसलिए आज स्थिति ऐसी बन गयी है कि धर्म-विषयक, अधुरी, अपरिपक्व और कभी-कभी विकृत मान्यताओं के कारण, तोड़फोड़, उन्माद, खून बहाने तक बात पहुँचती है, तो दूसरी तरफ सभी बुराइयों की जड़ धर्म ही है, ऐसी धारणा बनाकर, धर्म को समाज में से या कम-से-कम सार्वजनिक जीवन से नेस्तनाबूद कर डालने पर कुछ लोग तुले हुए हैं।

सेक्युलर (पंथनिरपेक्ष) राज्य के बारे में भी भ्रान्तियाँ बहुत दिखाई देती है।

ऐसी परिस्थिति में धर्म के बारे में गहरी और विशद छानबीन की आवश्यकता है। मानव के विकास में और उसकी उन्नति में धर्म कहाँ तक उपयोगी है, धर्म के मुख्यतत्त्व क्या हैं, आज विज्ञान-युग में धर्म का स्वरूप कैसा होना चाहिए, विभिन्न धर्मों के बीच सामंजस्य कैसे बैठाया जाय आदि विषयों पर शांति और समग्रता से सोचने और करने की अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसे विचार-मन्थन में सहायक और उपयोगी हो, इस दृष्टि से विज्ञान-युग में धर्म—पुस्तक प्रकाशित हुई है।

विनोबाजी के अनेक प्रवचनों और लेखों का कुछ संशोधन और परिवर्द्धन के साथ श्री बालविजय ने सम्पादन किया है। वे विनोबाजी के निजी सचिव रहे हैं तथा इस समय ११ सितम्बर १९९४ से १५ अगस्त १९९७ तक आयोजित हो रही जय-जगत मैत्री-यात्रा का नेतृत्व कर रहे हैं।

विश्वास है कि समाज में धर्म के बारे में सही समझ बनाने तथा स्वस्थ विचार-प्रचार में इस पुस्तिका का भरपूर उपयोग होगा।

साधना-केन्द्र

वाराणसी।

३० जनवरी, १९९६

हेमदेव शर्मा

संयोजक

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन



विषय-सूची

१. धर्म की व्याख्या भाव-मूलक हो
२. हिंदूधर्म की रचना में व्यापक दृष्टि
३. मूर्ति-पूजा का रहस्य
४. ग्रन्थ-प्रामाण्य मान्य नहीं
५. व्यक्तिनिरपेक्ष दृष्टि
६. वर्ण-व्यवस्था कर्माधारित
७. परमेश्वर एक, विभूतियाँ गुणदर्शक
८. उपासना का इच्छा-स्वातंत्र्य
९. विश्व-संग्राहक स्वरूप
१०. हिन्दू-धर्म की विश्वव्यापक व्याख्या
११. भारत : समन्वय की भूमि
१२. सभी धर्मों का नजदीक से परिचय हो
१३. सर्व-धर्म-समभाव की वृत्ति पनपे
१४. धर्म को त्रिविध कैद से मुक्त करें
१५. धर्म-समन्वय संभव
१६. सभी धर्मों का सार यानी अध्यात्म
१७. धर्म के पाँच स्तम्भ
१८. सर्वमान्य आध्यात्मिक निष्ठाएँ
१९. धर्म-सम्प्रदाय कालबाह्य
२०. सही धर्म की स्थापना अब विज्ञान-युग में होगी
२१. सेक्युलर स्टेट का अर्थ
२२. अध्यात्म-क्षेत्र में भारत का योगदान



१. धर्म की व्याख्या भावमूलक हो

जब किसी वस्तु का प्रत्यक्ष वर्णन करने के बजाय परोक्ष वर्णन किया जाता है यानी इसमें उस वस्तु के सिवा दूसरी सभी वस्तुओं का निषेध करते-करते मुख्य वस्तु का वर्णन किया जाता है, तब वह व्यावर्तक व्याख्या कहलाती है। व्यावर्तक व्याख्याओं का आधार पारस्परिक अभाव का विचार है। इस प्रकार की व्याख्या से अर्थ का स्पष्ट बोध नहीं होता।

जब ऐसी व्यावर्तक व्याख्याएँ समाजशास्त्र के क्षेत्र में लागू की जाती हैं तब तो वह अत्यन्त अनर्थकारक साबित होती हैं। क्योंकि समाजशास्त्र में पारस्परिक अभाव की नहीं, किन्तु पारस्परिक भाव की मुहर चलती है। वह तो सृष्टि-रचना का सामान्य तत्त्व है। जैसे कि बीज में फल और फल में बीज, पिण्ड में ब्रह्माण्ड और ब्रह्माण्ड में पिण्ड, आकाश में गंहराई और गहराई में आकाश, साहित्य में ग्रंथ और ग्रंथ में साहित्य, स्वार्थ में परार्थ और परार्थ में स्वार्थ, ताने के धागे में भरनी और भरनी के धागे में ताना, इस प्रकार समाज में सभी वस्तुएँ एक-दूसरे के साथ पिरोयी हुई हैं। इसमें पारस्परिक भाव मुख्य है।

यदि पारस्परिक अभाव के विचार के आधार से 'हिन्दू' की व्यावर्तक व्याख्या करने जाय, तो हिन्दू की व्याख्या होगी - जो मुसलमान नहीं, वह हिन्दू। जो ख्रिस्ती नहीं, वह हिन्दू। जो बौद्ध नहीं, वह हिन्दू। जो पारसी नहीं, वह हिन्दू वगैरह। वास्तव में हिन्दू और हिन्दू-धर्म की और सभी धर्मों की भी व्याख्या पारस्परिक भाव पर आधारित होनी चाहिए। यानी कि हिन्दू-धर्म में मुसलमान हैं और इस्लाम-धर्म में हिन्दू हैं और दोनों में धर्म है। इसके विपरीत व्याख्या करना बिल्कुल गलत बात होगी।

व्यावर्तक दृष्टि से दुनिया की ओर देखने की पद्धति मूलतः गलत है। 'हिन्दू मुसलमान नहीं और मुसलमान हिन्दू नहीं' - इस प्रकार के दर्शन से तो संकीर्ण गुटबन्दी ही खड़ी करते जायेंगे। इससे तो पूरी सृष्टि का कोई मूल्य ही नहीं रहेगा, किसीकी कुछ कद्र नहीं होगी, सामाजिक व्यवहार की गाड़ी ठप होगी, फँस जायगी और दुनिया में जो आदर-भावना है, वह नष्ट होती जायगी।



धर्म हमारा चतुर्विध सखा है। हमारे व्यक्तिगत, सामाजिक, ऐहिक और पारलौकिक जीवन में वह मित्र का कार्य करता है। धर्म की व्याख्या की गयी है : **धारणात् धर्मः** – सभी को धारण करता है, इसलिए वह धर्म है। किन्तु बदकिस्मती तो यह है कि सभी को धारण करनेवाला धर्म ही आज विभाजन करनेवाला बन गया है। धर्म आज मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद खड़े कर रहा है। कोई धर्म-कार्य हो, वहाँ सभी लोग इकट्ठे हों, ऐसा नहीं होता। शिव-भक्तों का एक पंथ है, तो वैष्णवों का दूसरा पंथ! और वैष्णवों में भी राम का एक पंथ, तो कृष्ण का दूसरा पंथ ! इसमें कई एक सगुण भक्ति-पंथ के हैं, तो कई निर्गुण। और फिर अलग-अलग धर्म-पंथी होते हैं। एक कहेगा, मैं तो राम का ही नाम लूँगा, तो दूसरा कहेगा, मैं अल्लाह का नाम ही लूँगा। इस प्रकार जो धर्म सभी को प्रेम के बन्धन में इकट्ठा करनेवाला उत्पन्न हुआ था, वही धर्म आज अलगाव खड़ा कर रहा है। आज धर्मवालों ने इतने भेद बढ़ा दिये हैं कि धर्म साधक बनने की बजाय बाधक बन बैठा है।



२. हिन्दू-धर्म की रचना में व्यापक दृष्टि

हिन्दू-धर्म की रचना अत्यन्त उदार भाव से हुई है। मैं (यानी कि कोई भी एक 'जीव'), तू (यानी कि इनसे अन्य सर्व जगत्) और वह (यानी कि जगत्कर्ता ईश्वर) – इन तीनों से विश्व का व्याकरण बना है। ये तीनों भी पारस्परिक भाव से बँधे हुए हैं। अर्थात् मुझमें सभी जीव और परमेश्वर, सभी जीवों में परमेश्वर और मैं, और परमेश्वर में मैं और सभी जीव – इस प्रकार का यह त्रिकोण बैठाया है। हिन्दू-धर्म की रचना ऋषियों ने पारस्परिक भाव के उदार तत्त्व पर ही बनायी है। इसलिए हिन्दू-धर्म की अभावमूलक व्याख्या करने जायेंगे, तो वह हिन्दू-धर्म की जड़ पर ही प्रहार करने जैसा होगा।

व्यापकता, यह तो हिन्दू-धर्म की आत्मा है। मनुष्य को मनुष्य के नाते ही देखें, नहीं तो हम हिन्दू-धर्म की आत्मा को ही खो बैठेंगे। हिन्दू-धर्म कहता है कि सबमें एक ही आत्मा झलकती है। हिन्दू-धर्म इतना विशाल धर्म है कि यहाँ किसी भी प्रकार के संकुचित भाव को स्थान नहीं। इस बात को यदि नजरअंदाज करेंगे तो हिन्दू-धर्म की नींव ही हम उखाड़ देंगे। हमारे शास्त्र कहते हैं – **एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति**। हिन्दू-धर्म कहता है, सत्य एक है, किन्तु उपासना के लिए वह अलग-अलग भी बन सकता है। शास्त्रों ने 'मूर्खाः बहुधा वदन्ति', ऐसा नहीं कहा। ऐसी व्यापक वृत्ति हिन्दू-धर्म में है ऐसा समझेंगे तभी हिन्दू-धर्म की सेवा कर पायेंगे।

हिन्दू-धर्म में विचार-स्वातंत्र्य की पराकाष्ठा देखी जाती है। इसमें षड्-दर्शनों का समावेश हुआ है। एक ही धर्म में इस तरह अनेक प्रकार के दर्शन एक साथ कैसे रहते हैं, इस विषय में बहुतों को आश्चर्य होता है। किन्तु हम वृक्ष को देखें। एक ही वृक्ष पर पत्ते, फूल, फल, शाखाएँ कैसे इकट्ठे रह लेते हैं? इन सभी में देखने जायँ तो समानत्व तो कुछ भी नहीं। किन्तु प्रकृति में हमें सर्वत्र भेदात्मक एकत्व का ही रूप दिखायी पड़ता है। इसके उदाहरण ढूँढने कहीं नहीं जाना होगा। चारों ओर वह देखने को मिलेंगे। ऐसा ही हिन्दू-धर्म में है।

हिन्दू-धर्म ने देखा कि बुद्ध में सत्य का अंशावतार हुआ है। तब बौद्धों के विशिष्ट दर्शन को उसने अपने में आत्मसात् किया। बौद्ध 'धर्म' हिन्दुस्तान में रहा नहीं, बौद्ध 'दर्शन' रहा। हिन्दू-



धर्म के व्यापक क्षितिजों में सभी धर्मों को, भिन्न-भिन्न दर्शन के नाते, आत्मसात् करने की सुविधा है।

हिन्दू-धर्म में जैसे तात्त्विक विचार-भेद की अद्भुत सहिष्णुता है, वैसे आचार-भेद की भी है। ब्राह्मणादि वर्ण-भेद, ब्रह्मचर्यादि आश्रम-भेद, शैव-वैष्णवादि देवता-भेद, द्वैताद्वैतादि दर्शन-भेद, कबीर-नानकादि पंथ-भेद, समर्थ-चैतन्यादि भक्ति-भेद, श्रुति-स्मृति आदि शास्त्र-भेद, तीर्थ-क्षेत्रादि स्थल-भेद वगैरह अनेक कारणों से हिन्दू-धर्म में आचार-भेद मान्य किये गये हैं।

इसलिए अन्य धर्मों का आचार भी मान्य करने से कुछ बिगड़ेगा नहीं। किसी भी धर्म के अनुयायी अपने-अपने धर्म के अनुसार भले ही भिन्न-भिन्न आचरण करें। **स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः** – अपने-अपने कर्म करने से हर एक व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर सकता है। कहने का मतलब है कि सभी धर्मों के आचारों को मान्यता दी गयी है। भिन्न-भिन्न धर्मों के भिन्न-भिन्न आचार बहुधा तत्कालीन देशकालादि परिस्थिति को ध्यान में रखकर होते हैं। ऐसे आचार और रिवाजों का धर्म की आत्मा के साथ विशेष सम्बन्ध नहीं रहता।

सार यह है कि हिन्दू-धर्म में अनेक आचार-भेद और विचार-भेदों का समावेश हुआ है। इसलिए हिन्दू की और हिन्दू-धर्म की जो व्यापक भावना है, विचार-स्वातंत्र्य और आचार-स्वातंत्र्य के लिए जो औदार्य है, भिन्न-भिन्न दर्शनों की जो स्वीकृति है, भिन्न-भिन्न धर्मों के भिन्न-भिन्न आचारों के लिए जो सहिष्णुता है, वह कायम रखने से ही हिन्दू-धर्म की सच्ची सेवा मानी जायगी।

कहा जाता है कि हिन्दू-धर्म 'सनातन' धर्म है। 'सनातन' शब्द का प्रयोग कई बार किये जाने पर भी इसके सही-सही अर्थ का पूरा बोध लोगों को नहीं होता है। धर्म दोहरा है। एक, जो बदलता नहीं, जो कायम रहता है, जैसे कि सत्य का परिपालन प्राचीन काल में भी धर्म माना गया था और आज भी है। हिन्दुस्तान में इसका परिपालन धर्म माना गया है। इसी प्रकार दूसरे देशों में भी है। सत्य के परिपालन में देश-काल का भेद लागू नहीं होता। वह तो नित्य, शाश्वत और सनातन धर्म है। इसी प्रकार प्रेम, ज्ञान, दया, वात्सल्य, ये सभी सनातन धर्म हैं।



इन सभी शाश्वत तत्त्वों को व्यवहार में लाने के लिए तत्कालीन युग में जो किया जाता रहा है, वह समय, प्रसंग और देश के अनुसार बदलता रहा है। कोई खड़े रहकर हाथ जोड़े हुए भगवान् की प्रार्थना करता है। कोई घुटने टेककर करता है। उपासना के लिए कोई कुरान का, कोई बाइबिल का, तो कोई गीता का सहारा लेता है। लेकिन परमेश्वर की भक्ति में, परमेश्वर को सर्वस्व समर्पित करने की वृत्ति में कोई फर्क नहीं पड़ता। प्रार्थना के अलग-अलग प्रकार में फर्क पड़ेगा, परन्तु सभी धर्मों में भक्ति का तत्त्व सनातन है। वह सभी के लिए समान है, इसका निरन्तर ध्यान करते रहना, यही हमारा कर्तव्य है। इसके लिए समाज, देश और कालानुसार पद्धतियाँ और आचरण होता है। यह धर्म का बड़ा हिस्सा होने पर भी गौण है। हिन्दू-धर्म सनातन तत्त्वों को विशेष महत्त्व देता है इसलिए उसे सनातन धर्म कहा गया है।



३. मूर्ति-पूजा का रहस्य

तात्त्विक दृष्टि से भी विश्व की छोटी-बड़ी सभी वस्तुएँ विश्व की छोटी-बड़ी आवृत्ति के समान ही हैं | इसे दूसरी भाषा में कहना हो, तो कोई भी वस्तु एक स्वयंपूर्ण विश्व ही है। विश्व की विविध शक्तियों का यदि वर्गीकरण करके देखेंगे तो पता चलेगा कि जितने भी मूलभूत तत्त्व निकले हैं वे सब-के-सब समस्त वस्तुओं में मौजूद हैं। विश्व का जो कुछ मूल तत्त्व होगा अथवा मूल तत्त्व होंगे, उसीकी भिन्न-भिन्न तस्वीरों, आकृतियों, प्रतिमाओं और मूर्तियों से विश्व का विस्तार हुआ है।

इस तत्त्व या तत्त्व-समूह को 'ब्रह्म' कहें तो कहना होगा कि प्रत्येक वस्तु ब्रह्म की प्रतीक है। मैं और मेरा भाई, एक ही वस्तु की तस्वीरें हैं, यह बात जरा कोशिश करने पर समझ में आती है, किन्तु मैं और बैल, एक ही वस्तु की तस्वीरें हैं, यह समझना कठिन होता है। फिर मैं और पत्थर, एक ही वस्तु की तस्वीरें हैं, यह तो असम्भव-सा ही लगता है। किन्तु यदि मैं मुझमें दूसरों का और दूसरों में मेरा अभाव मानने लगूँ तो ऐसा ही करना होगा कि मुझे प्रकृति-हृदय की पहचान नहीं। शालिग्राम में भले ही 'पत्थर विशेष' का गुण व्यक्त हुआ है, लेकिन अन्य सभी पदार्थों का सामान्य गुण भी अव्यक्त रूप से इसमें मौजूद है ही। तो इसमें अन्य पदार्थों का अभाव मानना उचित नहीं। यह शालिग्राम एक छोटा-सा विश्व है, विश्व के प्रतिनिधि-रूप में उसको पसन्द किया जा सकता है। विश्व का कोई भी पदार्थ विश्वरूप ही है।

मूर्ति-पूजा की कल्पना की यही भूमिका है। शालिग्राम में विश्वरूप विष्णु की भावना करना, यह लोगों की काल्पनिक दृष्टि है। लेकिन शालिग्राम की दृष्टि से देखेंगे तो भावना करने का प्रश्न ही नहीं है। शालिग्राम स्वतःसिद्ध विश्वरूप है। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि मूर्ति-पूजा गलत है। सच देखें तो यह एक उपयोगी भावना है। तो यह भावना शालिग्राम की दृष्टि से नहीं, हमारी दृष्टि से भी उपयोगी है। यह मानना ठीक नहीं कि अचेतन शालिग्राम में वैदिक मंत्रों द्वारा चैतन्यमय विष्णु की प्राण-प्रतिष्ठा करनी है। सत्य तो यह है कि जो सचेतन ही है, लेकिन अचेतन भासित हो रहा है ऐसे शालिग्राम स्थित चैतन्यमय विष्णु की वैदिक मंत्रों द्वारा हमें अपने हृदय में प्राण-प्रतिष्ठा करनी



है। चावल के एक कण से पूरे भात की परीक्षा होती है। इसी प्रकार एक शालिग्राम से समस्त विश्व की कल्पना कर सकते हैं।

वेद में एक वचन है - **विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन् अनातुरम्** - हमारे गाँव में परिपुष्ट और निरोगी विश्व का दर्शन हो। मतलब है कि हमारा गाँव समस्त विश्व का एक अंश ही है। फिर भी ग्रामसेचक के लिए तो वह एक परिपूर्ण वस्तु है। एक गाँव की सेवा में वह समग्र जगत् की सेवा कर सकता है। दुनियाभर में ज्ञान और सेवा के जितने विषय हैं वे सबके सब एक गाँव की सेवा में उपयोगी हो सकते हैं। शिव परमेश्वर का एक अंश है, विष्णु परमेश्वर का एक अंश है, फिर भी शिव-उपासक शिव को और विष्णु-उपासक विष्णु को एक अंश नहीं मानेगा, वह तो उसे परिपूर्ण मानकर ही उपासना करता है। जो व्यक्ति जिस रूप में ईश्वर की उपासना करता है, उस रूप में वह परिपूर्णता का आधार मानता है। वह ईश्वर के दूसरे रूपों का निषेध नहीं करता, किन्तु अपने ध्यान के लिए तो वह एक ही रूप से चिपका रहता है।

मूर्ति-विशेष की पूजा के बारे में एक आक्षेप किया जाता है। "हमें तो मानवों की सेवा करनी चाहिए। किसी प्यासे को पानी पिलाना, भूखे को खिलाना, गंदे को नहलाना परमेश्वर की सर्वोत्तम सेवा है। मानव-रूप में जो ईश्वर है उसकी उपेक्षा करके अनखाने भगवान् को नैवेद्य चढ़ाना यह काहे का धर्म?" इस आक्षेप में विचार-दोष है। जो मनुष्य के साथ दयालु बर्ताव नहीं करता और पाषाण-मूर्ति की पूजा करता रहता है, वह ढोंगी कहा जा सकता है। लेकिन जो मनुष्य प्राणि-सेवा में मग्न है उसे भी मूर्ति-पूजा उपयुक्त हो सकती है। मानव की सेवा मानव का सर्वप्रथम कर्तव्य है इसमें कोई शंका नहीं। लेकिन हम देखते हैं कि मानवों में विकार होते हैं। जो सेवा करते हैं उसमें और जिसकी सेवा की जाती है उसमें भी। ऐसी स्थिति में हमारी सेवा में भी दोष पैदा हो जाता है और मानव में भगवान् का अंश देखने का भाव हमेशा नहीं टिकता। जिसकी सेवा की जाती है उसके विकार की प्रतिक्रिया सेवा करनेवाले के मन पर होती है। इसका एक उपाय मानव ने यह किया कि निर्विकार पत्थर को प्रतीक मानकर उसमें मानव की परिपूर्ण आकांक्षा भर दी। दूसरी भाषा में, उस निर्विकार पत्थर में ईश्वर का आरोपण करके उसकी वह पूजा करने लगा। और उसकी पूजा द्वारा अपने अहंकार और विकार को शून्य बनाने की कोशिश करने लगा। मानव



का परम आदर्श वही मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् माना गया है। योगसूत्र ने भगवान् की व्याख्या “रागद्वेषादि-रहित पुरुषविशेष” ऐसी की है। उसकी उपासना करने से मनुष्य धीरे-धीरे निरहंकार बनता है। एक भाई ने मुझसे पूछा, “प्रार्थना में इतना समय क्यों दिया जाता है? वह भी सेवा में लगाना बेहतर नहीं होगा?” मैंने कहा, सेवा की कीमत उसके परिमाण पर निर्भर नहीं है। सेवा में वृत्ति जितनी निरहंकार रहेगी उतनी सेवा की कीमत बढ़ेगी। मैंने दस सेर सेवा की, लेकिन चालीस सेर मेरा अहंकार रहा तो मेरी सेवा की कीमत १०/४० यानी १/४ हो गयी। इससे उलटे एक मनुष्य ने एक तोलाभर सेवा की, लेकिन उसका अहंकार शून्य है, तो उसकी सेवा की कीमत अनंत होगी। हम जानते हैं कि गणित में विभाजक शून्य रहा तो भागाकार अनंत आता है। अहंकार शून्य करने में प्रार्थना मदद दे सकती है। निरहंकारता से सेवा की कीमत बढ़ती है और अहंकार से घटती है। सुदामा के मुट्ठीभर तंदुल की कीमत उसको निरहंकारता के कारण पृथ्वी के मूल्य की हो गयी। सोचने से मालूम होगा कि इसमें गहरा सार भरा है। पत्थर की मूर्ति खड़ी करके सामने सिर झुकाकर साधक निरहंकारता का अभ्यास करते हैं। मूर्ति-पूजा अभ्यास का एक साधन है। अभ्यास की दृष्टि रही तो साधन काम आते हैं। अभ्यास की दृष्टि न रही तो उत्तम साधन भी निकम्मे हो जाते हैं। लेकिन उसमें साधन का दोष नहीं है, दृष्टि के अभाव का दोष है।

जिन्होंने भगवान् की मूर्ति की कल्पना की वे पागल नहीं थे। उससे मनुष्य की काफी चित्त-शुद्धि हुई है। एक जमाना था जब मनुष्य ने अपनी कला और सौंदर्यवृत्ति का सार प्रदर्शन मंदिरों में किया। मूर्ति में भगवान् की भावना करके मनुष्य ने अपना विकास किया। मूर्ति न होती तो बगीचे में से फूल तोड़कर मनुष्य उसको अपनी नाक में लगाता। लेकिन भगवान् की मूर्ति पर फूल चढ़ाकर – जो कि फूल के लिए सर्वोत्तम स्थान है – मनुष्य ने अपनी गंधवासना संयत और उन्नत की। अपनी वासना को मिटाने के लिए भगवान् को समर्पण की युक्ति मनुष्य ने निकाली।



४. ग्रन्थ-प्रामाण्य मान्य नहीं

‘हिन्दू-धर्म की रचना’ यह शब्द -प्रयोग विरोधात्मक है। किसी एक समय, किसी एक व्यक्ति द्वारा किसी ग्रंथ के आधार पर हिन्दू-धर्म की स्थापना हुई, ऐसा नहीं कहा जा सकता। हिन्दू-धर्म की इमारत की रचना ग्रंथ-प्रामाण्य के आधार पर नहीं बनायी गयी। अनेक ग्रंथ हिन्दू-धर्म से जुड़े हुए हैं, किन्तु हिन्दू-धर्म किसी भी ग्रंथ से बँधा नहीं। ऋग्वेद आदि चार वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, स्मृति-ग्रंथ, महाभारत आदि इतिहास, पुराण, सूत्र, दर्शन, भाष्य इत्यादि संस्कृत ग्रंथ, इसी प्रकार नानक का ग्रंथसाहब, कबीर का बीजक ग्रंथ, तुलसीदास की रामायण, तुकाराम की गाथा इत्यादि भाषाग्रंथ सभी महद् अंश से हिन्दू-धर्म के ग्रंथ हैं। किन्तु हिन्दू-धर्म इन में से एक भी ग्रंथ का नहीं। इन ग्रंथों और हिन्दू-धर्म में द्वैत नहीं, अद्वैत ही है। किन्तु यह अद्वैत भी शंकराचार्य की षट्पदी में कथित अद्वैत के स्वरूप का है।

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।

सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः।।

“भगवन् ! आपका और मेरा अद्वैत का नाता है, किन्तु फिर भी मैं आपका हूँ, आप मेरे नहीं। व्यवहार में देखिये, समुद्र में तरंगें रहती हैं, तरंग में समुद्र रहता नहीं। यही न्याय हिन्दू-धर्म के ग्रंथों के बारे में भी ठीक बैठता है।

किन्तु तब प्रश्न यह खड़ा होता है कि जब ऐसा ही हो तब वेद-प्रामाण्य का अर्थ क्या? पंडितजनों ने वेद में प्रामाण्य-बुद्धि को हिन्दू-धर्म का विशेष लक्षण माना है। यहाँ तक कहा जाता है कि 'देव' (भगवान्) में विश्वास न हो तो चलेगा, किन्तु 'वेद' पर विश्वास तो होना जरूरी है। इसका क्या मतलब है? ऐसे प्रश्न खड़े होते हैं, इस पर जरा सूक्ष्म विचार करना होगा।

पुराण आदि ग्रंथों का अर्थ तो समझ पाते हैं, किन्तु वेदों का अर्थ तुरन्त ठीक-ठीक समझ में नहीं आता। और वेदों का अर्थ करना शक्य नहीं, बल्कि वेदों का अर्थ करना ही नहीं चाहिए। इतना ही नहीं, वेदों का तो कोई अर्थ ही नहीं यहाँ तक का प्रतिपादन करनेवाले कई मीमांसक पहले हिन्दुस्तान में हो गये। इसके पीछे कुछ सिद्धान्त है। क्योंकि वेदों का अर्थ पवित्र और उतना



ही गूढ़ है, इसी श्रद्धा से वेदों के प्रति प्रामाण्य-बुद्धि रखना मानसशास्त्र की दृष्टि से असम्भव नहीं। जिसे स्वस्तिक की आकृति में ब्रह्मदर्शन होता है, उसे वेद में ब्रह्मदर्शन करना कोई मुश्किल काम नहीं। अर्थात् यह मूर्ति-पूजा हुई। शालिग्राम की पूजा करते समय यदि शालिग्राम की गोलाकार आकृति दिखेगी तो मूर्ति-पूजा व्यर्थ होगी। शालिग्राम को वर्तुलाकार देखना यह भौतिक ज्ञान है, मूर्ति-पूजा में मूर्ति का भौतिक स्वरूप दिखने पर भी देखना नहीं है। इसी प्रकार वेद-प्रामाण्य जब मूर्ति-पूजा के सिद्धान्त के आधार से स्वीकार करेंगे, तब वेदों का अर्थ न करेंगे तो भी चलेगा, बल्कि करना ही नहीं चाहिए।

लेकिन वेद-प्रामाण्य का जब इसी प्रकार अर्थ करेंगे तब वेदों का समावेश मूर्ति-पूजा विभाग में ही होगा। अब मूर्ति-पूजा करनी ही चाहिए, ऐसा हिन्दू-धर्म का कहना नहीं है और मूर्ति-पूजा करनी ही है, तब भी किसी एक ही मूर्ति का पूजन का आग्रह तो हिन्दू-धर्म में बिल्कुल ही नहीं है। उपासना के लिए आप कौनसी मूर्ति पसन्द करें, इसके बारे में हिन्दू-धर्म का कोई भी बन्धन नहीं। तो फिर कोई वेद के स्थान पर गीता की मूर्ति पसन्द करे, तब उसे गीता के अर्थ तक का पता न हो, संस्कृत भाषा भी भले न जानता हो, फिर भी रोज गीता ग्रंथ की पूजा करे तो, और उसे लगता हो कि गीता की पूजा करने से उसकी भावना पवित्र बनती है तो, वेद के बदले गीता की पूजा करे, इसमें भी हिन्दू-धर्म को कोई बाधा नहीं। ऐसे व्यक्ति को भी हिन्दू मानने से कोई इनकार नहीं कर सकेगा।

इस प्रकार मूर्ति-पूजा रूप में भी वेद को प्रमाण मानना, ऐसा आग्रह हिन्दू-धर्म का नहीं। वेद की कितनी ही महिमा हिन्दू-धर्म में क्यों न हो, फिर भी वेद-प्रामाण्य का अथवा वेद के प्रति पूज्यभाव की जबरदस्ती किसी पर भी हिन्दू-धर्म नहीं करता। इसलिए वेद के स्थान पर गीता ही नहीं, तो किसीको बाइबिल भी प्रमाण लगता हो तब भी मूर्ति-पूजा की दृष्टि से हिन्दू-धर्म को मान्य है।

हिन्दू-धर्म की यह बहुत बड़ी विशेषता है, ऐसा मैं मानता हूँ। ऐसा किसी दूसरे धर्म में मैंने नहीं देखा। सभी धर्मों में कई अच्छी चीजें हैं, यह मुझे पता है और उसे ग्रहण भी करता हूँ। फिर भी हिन्दू-धर्म की यह विशेषता मैंने दूसरे धर्मों में नहीं देखी। कोई ईसाई कभी ऐसा नहीं कहेगा



कि यदि तुम्हें बाइबिल पसन्द नहीं है तो उसे छोड़कर दूसरा ग्रंथ ले लो। वह तो ऐसा ही कहेगा कि यदि तुम्हें बाइबिल पसन्द नहीं है तब तो तुम ईसाई नहीं हो।

हिन्दू धर्म ऐसा नहीं कहेगा। वह तो कहेगा कि तुम्हें वेद पसन्द नहीं है तो गीता पढ़ो। गीता पसन्द नहीं है तो रामायण पढ़ो। रामायण पसन्द नहीं है तो भागवत पढ़ो और कुछ भी पसन्द नहीं है तो ठीक है, कुछ भी मत पढ़ो। इससे तुम्हारा हिन्दुत्व नहीं मिटेगा। इतनी उदारता है हिन्दू-धर्म में। हिन्दू-धर्म में अनेक ग्रंथ भरे पड़े हैं। कई ग्रंथों में तो एक-दूसरे से कई विरोधी बातें भी कही गयी हैं। किन्तु आप कोई भी ग्रंथ पढ़िये और इससे यदि आपकी चित्त-शुद्धि होती है तो वह हिन्दू-धर्म को मंजूर है। क्या रामायण-भागवत इतना ही पढ़ना मनुष्य का कर्तव्य है? मनुष्य का कर्तव्य तो चित्त-शुद्धि करना, आत्म-दर्शन करना है। निर्दोष हृदय ही सच्चा धर्म है। हृदय को दोषरहित और चित्त को शुद्ध करने के लिए यदि ग्रंथ के द्वारा आपको मदद मिलती है तो ले लीजिये, न मिलती हो तो छोड़ दीजिये। हिन्दू-धर्म का इसमें कोई झगड़ा नहीं है।

जैसे मुसलमानों का एक ही ग्रंथ है 'कुरान', ईसाइयों का बाइबिल, इस तरह हिन्दू-धर्म का एक ही धर्म-ग्रंथ न होने से इसकी शक्ति बिखर जाती है, ऐसा मानना भी ठीक नहीं है। मैं तो मानता हूँ कि हिन्दू-धर्म के लिए एक ग्रंथ प्रमाण नहीं है यही इसकी बड़ी शक्ति है। धर्म तो समुद्र है, समुद्र में सभी नदियाँ समा जाती हैं। हमें समन्वय करने की खूबी आनी चाहिए। उपनिषदों का समन्वय गीता ने किया, गीता का भागवत ने किया। हमें अब कुरान, बाइबिल और गीता का समन्वय करना है। जैसे समुद्र सभी नदियों को स्वीकार करता है, ऐसी ही वृत्ति हमारी होनी चाहिए। विवेकानन्द ने कहा है कि हमारा वेदान्त धर्म है। हम सभी उपासनाओं को समान भाव से देखते हैं। यही हमारी सबसे बड़ी शक्ति है।

वेद-प्रामाण्य की बात व्यापक दृष्टि से देखनी है। वेद-प्रामाण्य हिन्दुत्व का कोई अनिवार्य लक्षण नहीं माना गया। जो वेद-प्रामाण्य पर जोर देते हैं, उनके केवल चार ही वेद नहीं हैं, वे कहते हैं, **अनन्ता वै वेदाः** - वेद अनन्त हैं। अनन्त वेदों का ग्रंथ-प्रामाण्य से कोई सम्बन्ध नहीं। क्योंकि वे ग्रंथ ही नहीं हैं। ऐसी स्थिति में वेद विशेष नाम न रहकर सामान्य नाम बनता है और इसके अर्थ



का स्वरूप 'आत्मिक ज्ञान' ऐसा होगा। 'वेद' शब्द का व्यापक अर्थ मानकर इनमें सभी सद्-ग्रंथ समाविष्ट कर लेने हैं।

और फिर वह भी मूर्ति-पूजा के रूप में। इसमें किसी भी सद्-ग्रंथ को प्रमाण मानने की बात नहीं है। अर्थ का अनुसंधान किये बिना ग्रंथ को ब्रह्मरूप मानना यह मूर्ति-पूजा है, ग्रंथ-प्रामाण्य नहीं। ग्रंथ-प्रामाण्य का अर्थ है, ग्रंथ के अर्थ को ध्यान में रखकर ग्रंथ में जो कुछ कहा गया है, उसे स्वतः प्रमाण मान लेना। ऐसा ग्रंथ-प्रामाण्य हिन्दू-धर्म में कहीं भी नहीं है। हिन्दू-धर्म हर्गिज नहीं कहता कि ग्रंथ में जो कुछ कहा हो उसे सत्यासत्य का विचार किये बिना ही अक्षरशः मान्य कर लें, फिर वह वेद ही क्यों न हो। शंकराचार्य कहते हैं - **न हि श्रुतिशतमपि शीतलोऽग्निरप्रकाशो वेति ब्रुवन् प्रामाण्यमुपैति** - अग्नि शीतल है, या अन्धकारमय है, ऐसा कहनेवाली सौ श्रुतियाँ निकलें, फिर भी वह प्रमाण नहीं हो सकतीं।

गेलिलियो ने खगोल के बारे में खोज की, वह बाइबिल के पुराने करार के कई एक वचनों के अक्षरार्थ से विरुद्ध जा रही थी। इसीलिए गेलिलियो को बहुत सताया गया। योरप के इतिहास में इस बात का उल्लेख है। योरप में उन दिनों धर्म-सम्प्रदाय की ऐसी वृत्ति थी। किन्तु हिन्दू-धर्म में ग्रंथ-प्रामाण्य को इस प्रकार का स्थान कभी नहीं मिला। इसलिए शंकराचार्य ने हिन्दू-धर्म की उदार नीति उद्घोषित कर दी कि श्रुति में सृष्टि-विज्ञान विषयक जो भी वचन हैं उन्हें अक्षरशः स्वीकार करना जरूरी नहीं।

एक बात समझ लेनी चाहिए कि पूज्य-बुद्धि और प्रामाण्य-बुद्धि में फर्क है। जन्मदाता माता के प्रति पूज्य-बुद्धि रखना, यह मेरा पुत्र-धर्म है, किन्तु माता का कहना सही हो या गलत, उसे प्रमाण मानना, ऐसी प्रामाण्य-बुद्धि का बन्धन स्वीकार करना कदापि धर्म नहीं है। हिन्दू-धर्म किसी भी ग्रंथ का, वेद का भी प्रामाण्य स्वीकार नहीं करता। वर्तमानकाल को भूतकाल से नियत करना यह प्रगति का अवरोध करने जैसा है। पुरातन शब्द को अनुभव की कसौटी पर परख लेना, यही योग्य होगा।



सच देखें तो जिसे हम धर्म-ग्रंथ कहते हैं वह पूरा-पूरा धर्म-विचार का भण्डार ही है, ऐसा नहीं। फिर चाहे वह हिन्दू-धर्म का हो, मुस्लिम-धर्म का हो, ख्रिस्ती-धर्म का हो या अन्य किसी भी धर्म का हो। बड़े-बड़े धर्म-ग्रंथों में भी ऐसे अंश हैं, जिसे हम आज की कसौटी पर परखेंगे तो वह धर्म-विचार या सद्-विचार-रूप से मान्य नहीं होंगे। हम ऐसा नहीं कह सकेंगे कि महाभारत में जो कुछ भी लिखा है वह सब धर्म-विचार ही है। यही बात मनुस्मृति, कुरान, बाइबिल और अन्य सभी ग्रंथों की है। वास्तव में हमारी वृत्ति सार ग्रहण करने की होनी चाहिए। संतरे का फल उत्तम फल है, किन्तु उसमें भी छिलके फेंक देने हैं, बीज निकाल देने हैं और जो साररूप अंश है उतना ही ले लेना है। यह बात धर्म-ग्रंथों के लिए भी लागू है। किसी भी ग्रंथ को प्रमाण मानकर चलना यह बात ही गलत है। हिन्दू-धर्म की यही भूमिका है और वही योग्य भूमिका है।



५. व्यक्तिनिरपेक्ष दृष्टि

हिन्दू-धर्म जैसे किसी ग्रंथ-प्रामाण्य से मर्यादित नहीं, वैसे ही व्यक्ति-प्रामाण्य से भी मर्यादित नहीं। हिन्दू-धर्म की गठरी जैसे किसी ग्रन्थविशेष के रूमाल में बँधी हुई नहीं, वैसे ही वह किसी व्यक्ति की खूँटी पर टँगी हुई भी नहीं। हिन्दू-धर्म का नाम किसी भी सत्पुरुष के नाम से जुड़ा नहीं है। जैसे ख्रिस्ती-धर्म ईसामसीह से जुड़ा हुआ है, इस्लाम-धर्म पैगम्बर मुहम्मद के साथ जुड़ा हुआ है, इसी प्रकार भागवत-धर्म यद्यपि कृष्ण से जुड़ा हुआ है, फिर भी हिन्दू-धर्म न तो कृष्ण से जुड़ा है, न तो राम से जुड़ा है, न तो शिव से जुड़ा है। राम का भक्त राम की भक्ति करता है और भागवत भी पढ़ता है, कृष्ण का भक्त कृष्ण की भक्ति करता है और रामायण भी पढ़ता है। शिव-भक्त दोनों ग्रंथ नहीं पढ़ता, सिर्फ शैव-मार्ग देखता है। इस प्रकार हिन्दू-धर्म किसी व्यक्ति विशेष के साथ बँधा नहीं है। हिन्दू-धर्म के गाँव की रचना ही ऐसी की गयी है कि यहाँ किसी की भी चौधराई चल नहीं सकती।

हिन्दू-धर्म का निर्णय है कि **धर्मस्य प्रभुरच्युतः**—प्रमादरहित परमेश्वर ही धर्म का स्वामी है। अन्य सभी जीव प्रमादशील होने के नाते धर्म के सेवक हैं। धर्म पर इनकी सत्ता नहीं चल सकती। कइयों का मानना है कि सन्तों का शासन धर्म पर चलता है, क्योंकि सन्त भगवद्-अवतार ही हैं, भूदेव हैं। लौकिक दृष्टि से यह बात ठीक है, लेकिन खुद सन्त अपने-आपको प्रमादातीत या अच्युत नहीं मानते।

'स्थितप्रज्ञ' और 'अच्युत' परमेश्वर के अनन्य विशेषण हैं। यह किसी भी मनुष्य प्राणी के साथ जोड़े नहीं जा सकते। **पुराणमुनिनामपि सूक्ष्मापराध-दर्शनात्** - सूक्ष्म दृष्टि के लोगों से भी सूक्ष्म अपराध होते रहते ही हैं। सन्त पुरुष भगवान् के अवतार हैं, ऐसा हिन्दू-धर्म ने माना है। फिर भी 'अवतार' शब्द द्वारा ही सन्तों के प्रति पूज्य-बुद्धि प्रकट कर धर्म के क्षेत्र में इनकी सापेक्ष योग्यता भी बता दी है। 'अवतार' में नीचे अवतरण की भावना होने के कारण सन्त भी धर्म के 'सेवक' हैं, 'नायक' नहीं हैं।

हिन्दू-धर्म का निश्चित निर्णय है कि धर्म पर किसी भी व्यक्ति का, चाहे वह कितना भी सिद्ध-पुरुष क्यों न हो, उसका कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि सिद्ध-पुरुष की सिद्धि धर्म के



अनुष्ठान द्वारा ही प्राप्त की हुई होती है। इसलिए हिन्दू-धर्म की दृष्टि से सन्त धर्म के प्रति जिम्मेदार हैं, धर्म सन्तों के प्रति जिम्मेदार नहीं है। धर्म परमेश्वर के प्रति जिम्मेदार है। समाज की आँखें हैं सन्त, प्रकाश है धर्म और धर्म का सूर्य है ईश्वर। हिन्दू-धर्म में इन तीनों का इस प्रकार का रिश्ता माना है।

हिन्दू-धर्म किसी भी व्यक्तित्व के वृक्ष पर की आधारित अमरलता नहीं है। वह एक स्वतंत्र वृक्ष है और उसकी अनन्त शाखाएँ हैं, जिस पर असंख्य द्विजगणों के संगीत-सम्मेलन सम्पन्न हुए हैं। हिन्दू-धर्म किसी मनु या किसी मानव पर आधारित नहीं है। हिन्दू-धर्म पौरुषेय नहीं है। उसके पवित्र प्रवाह में अगणित सत्पुरुषों ने स्नान किया है, जिसका कोई हिसाब नहीं।

भगवान् के भावात्मक अवतारों की गिनती करते हुए गीता में संख्या दी गयी है **महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा** – पहले के सात महर्षि और चार मनु। लेकिन हिन्दू-धर्म ने ऐसे असंख्य ऋषियों के कुल देखे हैं। इसीलिए इन संख्याओं का अर्थ स्पष्ट करने में सभी भाष्यकारों की मुसीबत हुई है। महर्षि कौन, सप्त कौन, पहला कौन, चार कौन और मनु कौन? सभी अनिश्चित! हिन्दू-धर्म को व्यक्तिविशेष का महत्त्व न होने के कारण गीता ने हो कहा है कि इस ज्ञान का निरर्थक बोझ ही क्यों? फिर भी इतना मान्य किया है कि **सिद्धानां कपिलो मुनिः** – सिद्ध पुरुषों में कपिल मुनि श्रेष्ठ हैं। लेकिन इतने मात्र से हिन्दू-धर्म में ऐसी मान्यता का बन्धन नहीं है कि कपिल मुनि का मत ही प्रमाण मानना चाहिए।

व्यक्ति कोई भी हो, छोटा या बड़ा, मर्यादा से बँधा होता है। किसी व्यक्ति में घड़ा भर ज्ञान होगा, तो किसी व्यक्ति में ज्ञान का सागर होगा। सागर भी आखिर में क्या है? बहुत बड़ा घड़ा ही न! हिन्दू-धर्म बड़ा या छोटा घड़ा नहीं, वह तो अ-तल और अ-सीम सागर है। जिस प्रकार आकाश एक ही स्थान पर रहता हुआ जोरों से चलती हवा को पीछे छोड़ देता है, उसी प्रकार हिन्दू-धर्म की स्थिर गति व्यक्ति की चंचल गति को अपने एक कोने में ही समाविष्ट कर लेती है। हिन्दू-धर्म न तो सगुण ईश्वर से जुड़ा हुआ है, न ही निर्गुण ईश्वर से। इतना ही नहीं, वह ईश्वर से भी जुड़ा नहीं है, ऐसा कहा जा सकता है।



६. वर्ण-व्यवस्था कर्माधारित

वर्ण-व्यवस्था हिन्दू-धर्म में प्राचीन काल से है, लेकिन वह अनादि नहीं है। जैसे-जैसे समाज बढ़ता गया और सामाजिक जिम्मेदारियाँ बढ़ती गयीं वैसे-वैसे आवश्यकता के अनुसार वह आहिस्ता-आहिस्ता बनी है। उपनिषदों में आया है कि आरंभ में केवल एक ही वर्ण था – ब्राह्मण, जो मुख्य रूप से सृष्टि के साथ एकरूप होकर आध्यात्मिक चिंतन-मनन करता था और अपने सीमित साधनों से उपजीविका चलाता था। सभी काम एक ही व्यक्ति किया करता था। लेकिन जब समाज का विस्तार होने लगा और सामाजिक आवश्यकता बढ़ने लगी तब मदद के लिए दूसरे वर्ण का—क्षत्रिय का निर्माण हुआ। आगे अनुभव से मालूम हुआ कि दो वर्णों से भी सारा काम नहीं हो पाता, तो वैश्य वर्ण बना। और जब इनसे भी सारा काम न हो पाया तो चौथा शूद्र का वर्ण बना। मतलब यह कि समाज-व्यवस्था के लिए कर्म-विभाजन की दृष्टि से ये वर्ण बने। सबकी समान प्रतिष्ठा थी।

शूद्र के लिए उपनिषद् में वचन आया है कि वह सबका पोषण करनेवाला है—**शौद्रं वर्णमि असृजत पूषणम्** यानी पोषण करनेवाला। देवों का भी चार वर्णों के अनुसार वर्णन किया है। अग्नि को ब्राह्मण, इन्द्र को क्षत्रिय, रुद्रादि संघ करके रहते हैं इसलिए उन्हें वैश्य और धरती, क्योंकि वह सबका पोषण करती है, उसे शूद्र कहा गया है।

उस समय शूद्रों के प्रति अनादर की नहीं, बल्कि अत्यंत उच्च भावना थी। धरती को हम माता मानते हैं इसलिए पर्याय से शूद्रों के लिए माता का ही शब्द प्रयुक्त हुआ है। बृहदारण्यक उपनिषद् में स्पष्टता से कहा है कि समाज में कोई ऊँच-नीच नहीं है, सब लोग समाज के सेवक हैं। गीता में बताया है कि हरएक वर्ण अपना-अपना काम करे और निष्कामभाव से करे, ताकि मोक्ष पा सके – **स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः**। किसी काम को गीता ने छोटा या बड़ा नहीं माना है। मोक्ष के लिए हृदय की शुद्धि होना जरूरी है। शुद्ध हृदय से और निष्कामभाव से काम करनेवाला ब्राह्मण हो या शूद्र, या अन्य किसी वर्ण का, मोक्ष के सब समान अधिकारी हैं। इतना ही नहीं, अगर ब्राह्मण अपना काम ठीक नहीं करता है और भंगी अपना काम ठीक-ठीक करता है तो वह प्रामाणिक भंगी ब्राह्मण की अपेक्षा उच्च माना गया है। भागवत में भी लिखा है—



विप्राद् द्विषद्गुण-युताद् अरविन्द-नाभ-पादारविन्दविमुखात् श्वपचं वरिष्ठम्।

– जिस ब्राह्मण में अध्ययन-अध्यापन आदि गुण होते हुए भी अगर परमात्मा की भक्ति नहीं है तो उससे चांडाल भी श्रेष्ठ है।

हिंदुओं में जाति-भेद भी बने हैं, जो गलत हैं। जातियाँ जो बनीं, धंधे की वजह से बनीं। खेती का काम करनेवाले किसान, तेल बनानेवाला तेली, जूते बनानेवाला चमार, इस तरह धंधों के नाम से जातियाँ बनीं। उसमें ऊँच-नीच का कोई ख्याल नहीं था। परमात्मा की निगाह में सब एक हैं। **नानक उत्तम नीच न कोई** ऐसा गुरुनानक ने कहा है। और फिर कहा है कि **जिस हथ जोर करो देखै सोई** – उसका जिस पर फजल है, वह ऊँचा बनता है और जिस पर उसका गजब है, गुस्सा उतरता है, वह नीच बनता है। अपने में कोई उत्तम या नीच नहीं है। यही बात हर मजहब ने और हर किताब में कही है।

सबका सार यही है कि वर्ण-योजना में ऊँच-नीच का भाव नहीं था। सबकी समान प्रतिष्ठा थी। परंतु धीरे-धीरे ब्राह्मण और क्षत्रिय ऊँचे रह गये और बाकी सब नीच। वैश्यों ने भी धीरे-धीरे खेती का काम छोड़ दिया और वह भी शूद्रों पर ही आ पड़ा। इस तरह शूद्र इतने महान् बन गये कि खेती, गो-सेवा, सफाई आदि सभी काम उन पर आ गये, बाकी के सब लोग अलग रह गये। प्रत्यक्ष कारीगरी या शरीर का काम करनेवाले नीच समझे जाने लगे। जब से यह होने लगा दिन-ब-दिन हिन्दू-धर्म का भी पतन होने लगा, हजारों लोग हिंदू-धर्म को छोड़ गये और देश गुलाम बन गया।

रोमन-साम्राज्य का पतन इसलिए हुआ था कि वहाँ जो लोग हाथों से काम करते थे वे नीच माने जाने लगे थे। यही बात भारत में हुई। भारत की कारीगरी का नाश और विज्ञान का लोप तब से हुआ। प्राचीन काल में यहाँ विज्ञान की खूब प्रगति हो चुकी थी। विज्ञान तभी बढ़ता है, जब बुद्धिमान् लोग प्रत्यक्ष काम करते हैं, उद्योग करते हैं। इसलिए प्राचीन काल में सभी क्षेत्रों में विज्ञान जितना विकसित हुआ था, उतना ही रह गया। जब से शरीर-परिश्रम को नीच समझा



गया तब से समाज-व्यवस्था बिगड़ गयी, अर्थ-व्यवस्था बिगड़ गयी, स्वराज्य का लोप हुआ, विज्ञान का लोप हुआ और धर्म का भी लोप हो गया।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस सुबह उठकर कई दफा बस्ती के पाखाने साफ कर दिया करते थे। गांधीजी ने भी इसे किया है। हिंदू-समाज गीताकार कृष्ण को उतना नहीं जानता, जितना गोपालकृष्ण को। गोपालकृष्ण का नाम लेते ही गायों की सेवा करनेवाला कृष्ण का चित्र आँखों के सामने खड़ा हो जाता है। हिंदू-धर्म के महापुरुषों ने इसी तरह सदा सेवा का काम किया है और इसलिए हिंदू-धर्म उज्ज्वल रहा है।



७. परमेश्वर एक, विभूतियाँ गुणदर्शक

हिन्दू-धर्म में परमेश्वर के विषय में जितना गहन और सर्वांगीण विचार हुआ है, उतना शायद किसी दूसरे दर्शन और धर्म में नहीं हुआ। कुछ लोग सवाल उठाते हैं - 'ईश्वर को किसीने देखा नहीं है। श्रद्धा से उसे मान लेते हैं और उस श्रद्धा के आधार पर मंदिर बनाकर पूजा करते हैं यह मिथ्याचार है।' ईश्वर के अस्तित्व के बारे में मैं दलील नहीं करूँगा। इतना ही कहूँगा कि यह सवाल अविचारमूलक है। उसमें कुछ अहंकार भी है। अनेक सत्पुरुषों ने ईश्वर का साक्षात्कार और वर्णन भी किया है। ऐसी हालत में हम यह कहने का साहस कैसे कर सकते हैं कि ईश्वर है ही नहीं? हम इतना ही कह सकते हैं कि हमने उसको देखा नहीं है। लेकिन जिन्होंने ईश्वर-साक्षात्कार का वर्णन किया है वे भ्रान्त या मिथ्यावादी थे ऐसा हम नहीं मान सकते और उन सत्पुरुषों की बात मानकर जो श्रद्धा से ईश्वर की पूजा करते हैं, उनको हम दोष भी नहीं दे सकते। मैं कभी इंग्लैंड नहीं गया। लेकिन इंग्लैंड नाम का एक देश है इस बारे में मुझे शंका नहीं है। क्योंकि मैंने नहीं, तो भी दूसरों ने इंग्लैंड देखा है। ऐसे कई दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। व्यवहार में हर चीज को निज अनुभव से ही हम मानते हैं, ऐसा नहीं होता।

परमेश्वर एक ही हो सकता है और एक ही है, इस विषय में सभी धर्म एकमत हैं। हिन्दू-धर्म का भी यही मत है। लेकिन इस विषय में हिन्दू-धर्म की वृत्ति आग्रह की नहीं है। क्योंकि ईश्वर शब्द-शक्ति से परे है, चिंतन-शक्ति से भी परे है, फिर भी ईश्वर को समझने के लिए शब्दों का यत्-किंचित् उपयोग करते हैं। अब यह वर्णन और चिंतन एक ही प्रकार से नहीं, अनेक प्रकार से हो, तो कोई हर्ज नहीं है, ऐसा समझकर हिन्दू-धर्म ने इस प्रकार का कोई आग्रह रखा नहीं है।

इस प्रकार हिन्दू-धर्म में ईश्वर के विषय में विविध रूप से चिंतन हुआ है। इस कारण कभी-कभी ऐसा भ्रम खड़ा हुआ है कि हिन्दू लोग अनेक देवी-देवताओं को मानते हैं। सच देखें तो ऐसी बात नहीं है। परमेश्वर की एकत्वता निःसंशय अद्वितीय है। अद्वितीयता में दूसरी कोई भी चीज सहन ही नहीं की जा सकती, यह हिन्दू-धर्म जानता है। उपनिषद् में कहा गया है कि **एकमेवाद्वितीयम्** - ईश्वर एक ही है, दूसरा नहीं। **भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्** - समस्त सृष्टि का पति एक ही है। यह ऐसा परमेश्वर है, जो शब्दों से परे है।



यानी हिन्दू-धर्म में अनेक ईश्वर का विचार नहीं है । लेकिन एक ही ईश्वर की अनेक विभूतियों का चिंतन इसमें हुआ है । परमेश्वर का वर्णन एक ही तरह के विशेषण से नहीं हो सकता। मनुष्य की वाणी में उसका वर्णन करने की शक्ति ही नहीं है। फिर भी मनुष्य अपने समाधान के लिए उसका वर्णन करने की चेष्टा करता है तो विरोधी विशेषणों का प्रयोग करना पड़ता है। परमेश्वर के व्यापक होने पर भी मूर्ति-विशेष में उसकी अभिव्यक्ति हो सकती है। दुनिया में बिजली भरी है, लेकिन विशेष तरकीब से, विशेष स्थान में वह प्रकट होती है । वैसे ही जहाँ हमारी मानसिक भावना रहती है वहाँ परमेश्वर हमारे लिए प्रकट हो जाता है। अपनी भावना के अनुसार मनुष्य उपासना करता है तो उसमें परमेश्वर की व्यापकता का निषेध नहीं है।

कोई परमेश्वर को करुणा के रूप में देखते हैं, कोई निर्भयता के रूप में उसका चिंतन करता है। इस प्रकार हरएक की जरूरत के मुताबिक परमेश्वर का रूप अलग-अलग बना है । परमेश्वर ने हमें पैदा किया है यह सच है और परमेश्वर को हम पैदा करते हैं यह भी सच है । जिस परमेश्वर को हम ग्रहण करते हैं, वह हमारे लिए तो पूर्णावतार है। सच तो यह है कि वह परिपूर्ण परमात्मा का एक अंशमात्र है, एक विभूतिमात्र है। विद्याध्ययन में रत व्यक्ति के लिए भगवान् का रूप सरस्वती है । कमजोर व्यक्ति के लिए ईश्वर शक्तिरूप धारण करता है । फिर यह सब गुण-लक्षणों को अलग-अलग नाम दिया जाता है और उस नाम से विविध देवताओं की कल्पना की जाती है । इस प्रकार की कल्पना से परमेश्वर के अनेकविध रूप निर्मित होते हैं । फिर कोई व्यक्ति उसमें से एक कल्पना को मान्य कर परिपूर्ण ईश्वर का उसीमें ध्यान करता है, भले ही वह ईश्वर की सिर्फ एक विभूति की कल्पना हो, तब भी भक्त के लिए तो वह पूर्णावतार ही है।

इसी प्रकार एक ही हिन्दू-धर्म में अनेकविध उपासनाएँ चलती हैं। फिर भी वे उपासनाएँ अनेक देवताओं की नहीं, एक ही देवता की मानकर की जाती हैं । परमेश्वर के एक अंश को परिपूर्ण मानकर उपासना होती है। कभी-कभी पंचायतन-पूजा भी करते हैं । शंकर, विष्णु, गणपति, शक्ति, सूर्य की पंचभक्ति करते हैं । तब वह पंचायतन को पाँच परमेश्वर नहीं, एक ही परमेश्वर मानते हैं, इसलिए पंचायतन-पूजा करते हैं।



मनुष्य जब सुबह उठकर वेदाध्ययन करता है, उस वक्त वह ईश्वर को सरस्वती के रूप में देखता है। वही मनुष्य जब खेत में काम करेगा तब वह ईश्वर को लक्ष्मी के रूप में देखेगा। फिर घर में परिवार की सेवा करेगा तो ईश्वर की मातारूप में, देवी के रूप में उपासना करेगा। इस प्रकार वह एक ही मनुष्य ईश्वर के विविध गुणों की उपासना कर सकता है। वैसे ईश्वर की अनेक विभूतियों की एकत्र ध्यान-उपासना हो सकती है। इसका यह अर्थ नहीं कि वह मनुष्य एक परमेश्वर को मानने के बजाय दो-चार परमेश्वर को मानता है।



८. उपासना का इच्छा-स्वातंत्र्य

लोगों के दिलों में हिन्दू-धर्म के बारे में गलतफहमी है। हिन्दू-धर्म में तो देवी-देवताओं का बाजार ही खड़ा किया गया है, अनेक प्रकार की उपासना-विधियों की मण्डी लगायी गयी है, ऐसा वे मानते हैं। सच देखें तो यह देवी-देवताओं का बाजार नहीं, यह तो ईश्वर के अनेकविध गुण और विभूतियों का संग्रह करने की वृत्ति है। इसलिए वेदों ने कहा है कि **एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति** - सत्य एक है, लेकिन उपासक एक ही सत्य की अनेक प्रकार से उपासना करता है।

मण्डी में तो हरएक प्रकार की चीजें, वस्तुएँ तो रहेंगी ही, किन्तु मण्डी की हरएक वस्तु हरएक व्यक्ति को खरीदना जरूरी है, ऐसा कोई नियम तो नहीं है। इतना ही नहीं, हिन्दू-धर्म को तो इस मण्डी में कोई न जाय तो भी कबूल है। **अन्तरा चापि तु तद्दृष्टेः** इस सूत्र में सूत्रकार ने स्पष्ट कह दिया है कि वर्णाश्रम की मण्डी में, एक भी चीज बिना खरीदे, मोक्ष का उत्सव मनाया जाता है। आगे **अपि च स्मर्यते** सूत्र में कहा है कि संस्कार का जाल बुननेवाली स्मृतियाँ भी इस सिद्धान्त से सहमत हैं।

हिन्दू-धर्म का यह भी कहना है कि संस्कारादि के झमेले में पड़े बिना ही केवल मनुष्यमात्र को चरितार्थ करनेवाले मानवता के धर्म का यदि व्यक्ति श्रद्धा से आचरण करेगा तो इतने मात्र से ही मनुष्य पर ब्रह्मविद्या का अनुग्रह हो सकता है। मनु ने मनुष्य के धर्म-लक्षण बताये हैं -

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

इतने का सम्पूर्ण पालन करनेवाला पुरुष दूसरा कुछ करे या न भी करे तो भी वह हिन्दू-धर्म को मान्य है।

सारांश, मण्डी में जाना कर्तव्य नहीं है, अनिवार्य भी नहीं है। मण्डी का निर्माण सुविधा के लिए किया गया है। जिसके घर के आँगन में ही केला उगाने की शक्ति है, वह केला जरूर खाये, हिन्दू-धर्म को तो इससे ज्यादा खुशी होगी। लेकिन ऐसी शक्ति जिनके पास नहीं है, ऐसे



सर्वसाधारण मनुष्यों के लिए मण्डी लगायी जाती है। इसका उपयोग सर्वसाधारण जन जरूर कर ले इतना ही हिन्दू-धर्म का कहना है।

एक बात और, बाजार से जब चीजें खरीदना तय करें तो इस बाजार में विविध चीजें रखी हैं। यहाँ विशेषता यह है कि यहाँ के खरीददारों की सुविधा को इतना बारीकी से ख्याल किया गया है कि वह पूरा 'अपनी मर्जी का सौदा' बन जाता है। जिस प्रकार बाजार में दैनंदिन उपयोग की कई चीजें, त्योहारों में उपयोगी कई चीजें और कई मौज-मजा की चीजें रखी होती हैं। उसी प्रकार हिन्दू-धर्म के खोले गये स्मृतियों के बाजार में भी कई नित्य के, कई नैमित्तिक और कई काम्य कर्मों के नमूने रखे गये हैं। सम्पूर्ण मानव-समाज की भिन्न-भिन्न प्रकृति-प्रकार को ध्यान में रखकर ऐसा करना पड़ा है। फिर भी आज के बाजार जैसी कृत्रिम जरूरत खड़ी करने का इरादा नहीं है। इतना ही नहीं, यहाँ तो जरूरत जितनी कम हो सके उतनी कम करके व्यक्ति उत्तरोत्तर स्वावलम्बी बने, ऐसी यहाँ योजना है।

हिन्दू-धर्म का अंतिम उद्देश्य तो मनुष्य को सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त करने का है। नये बन्धन हर्गिज खड़े करने का नहीं है। फिर भी गर्भवास के भीषण अन्धकार से अभी-अभी ही बाहर आये-नवजात शिशु को एकदम सूर्य-प्रकाश में रख देने की उतावली नहीं की जाती। प्रकाश में आने के लिए कुछ काल तक उसे अन्धेरे में रखना ही पड़ता है। जैसे-जैसे उसकी आँख को प्रकाश का अभ्यास हो जाय, वैसे-वैसे उसके प्रकाश-दर्शन की मात्रा बढ़ाते जाते हैं। ऐसे ही कामक्रोधादि की अन्धकारमय डोली में रहनेवाले को मुक्ति का शुद्ध दर्शन कराने के पहले, या तो कराने के लिए उसे विशिष्ट संस्कार-विधि के मिश्र वातावरण में ले जाना जरूरी लगा। इसलिए हिन्दू-धर्म ने कई एक आचार-विधियाँ खड़ी की हैं। फिर भी इन विधियों के बन्धन में न तो हिन्दू-धर्म स्वयं बँधा है, न ही किसीको बाँधना चाहता है। **विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु** - मेरे कथन पर पूरा-पूरा विचार करने के बाद जैसी तेरी मर्जी होगी वैसा कर - इस गीता-वचन के मुताबिक हिन्दू-धर्म ने इच्छा-स्वातंत्र्य की जिम्मेदारी व्यक्तिमात्र पर छोड़ दी है।



९. विश्व-संग्राहक स्वरूप

हिन्दू-धर्म की रचना विश्व-संग्राहक स्वरूप की है, इसीलिए सभी धर्मों के आचार-विचार के लिए हिन्दू-धर्म में काफी अवकाश है।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।

तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥

- जो जिस स्वरूप में ईश्वर की भक्ति करना चाहता है, उसकी श्रद्धा उसी ही स्वरूप में मैं दृढ़ करता हूँ। हिन्दू-धर्म की यह प्रतिज्ञा है। इसलिए जब हिन्दू-धर्म की व्याख्या इस प्रकार की जाय कि हिन्दू वह, जो मुसलमान, ख्रिस्ती वगैरह नहीं, तब तो हिन्दू-धर्म की इस प्रतिज्ञा को ही बिल्कुल मिटा देने जैसा होगा।

यह बात सूत्ररूप से कहनी हो, तो बादरायण-सूत्र **नाभाव उपलब्धः** द्वारा कही जायगी। सृष्टि के दो विभाग कर लें तो इसमें से किसी भी एक विभाग में दूसरे विभाग का अभाव नहीं, क्योंकि इस सूत्र का अर्थ ही है कि परस्पर के बीज परस्पर में उपलब्ध हैं। प्रकृति-सृष्टि की समन्वयात्मक दृष्टि इस सूत्र में ग्रथित की गयी है। हिन्दू-धर्म सनातन धर्म है, ऐसी घोषणा यदि सच है तो उपरोक्त सूत्र का भाष्य इस प्रकार होगा कि हिन्दू-धर्म में अन्य धर्मों का अभाव नहीं है, क्योंकि सभी धर्मों के सिद्धान्त और साधना हिन्दू-धर्म में बीजरूप से उपलब्ध हैं। और मेरी ऐसी मान्यता है कि सभी धर्मों के बारे में भी ऐसा ही भाष्य करना सम्भव होना चाहिए।

हिन्दू-धर्म को यदि किसीने मजबूत बनाया है तो वह शंकराचार्य ने। जो काम भगवान् बुद्ध ने किया वही उन्होंने आगे बढ़ाया। बुद्ध के काल में यज्ञयाग कर्मकाण्ड चलते थे। लोग पशु-हत्या करते थे और परमेश्वर को उसीका भोग चढ़ाते थे। ऐसी निष्ठुरता को भी लोगों ने धर्म नाम दे दिया। बुद्ध ने इसी पर प्रहार किया। शंकराचार्य ने भी कर्मकाण्ड पर सीधा प्रहार किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि इसी देह में और इसी जीवन में ही हृदय-शुद्धि होकर आत्मानुभूति हो सकती है। यही सच्ची शुद्धि है और यही है धर्म का सार।



शंकराचार्य ने कर्मकाण्ड से हमें मुक्त कर दिया । फिर भी कहीं-कहीं कर्मकाण्ड चलते हैं। लेकिन ये धर्म के मूलतत्त्व नहीं हैं, यह बात शंकराचार्य ने स्पष्टता से प्रस्थापित कर दी है। हिन्दू-धर्म में किसी बात को लेकर आग्रह नहीं है । इसीलिए कर्मकाण्ड चले ही नहीं, ऐसा आग्रह भी नहीं है । जैसे मूर्ति-पूजा में आपका विश्वास है तो मानिये, न हो तो मत मानिये। इतना परम औदार्य हिन्दू-धर्म में है। इसका ज्यादातर श्रेय शंकराचार्य को है । हिन्दू-धर्म के लिए यह कोई नयी बात नहीं थी । लेकिन जो वेद-उपनिषद् के अन्तर्गत थी उसे उन्होंने जनता के सामने फिर से भारपूर्वक रखा। और अनेक प्रकार के शास्त्र-वचनों के बीच का विरोध खतम कर दिया है।

हिन्दू-धर्म में जैसे किसी भी सन्त या ग्रंथ का बन्धन नहीं है वैसे किसी आचार-विशेष या पंथ का भी बन्धन नहीं। हिन्दू-धर्म की गठरी विशिष्ट ग्रंथ की रूमाल में बँधी नहीं है अथवा विशिष्ट सन्त की खूँटी पर टँगी नहीं है । इसलिए हिन्दू-धर्म साम्प्रदायिक नहीं है। इसका न तो कोई एक ग्रन्थ है, न कोई एक पंथ है, न कोई एक सन्त है।

मुझसे किसीने कहा कि हममें से ज्यादातर लोगों का 'हिन्दू-माइन्ड' है। तो मुझे कहना चाहिए कि मेरा अपना हिन्दू-माइन्ड अवश्य है, लेकिन मुझसे कोई पूछे कि हिन्दू-माइन्ड का मतलब क्या है तो मैं जो परिभाषा करूँ, उसे आप ख्रिस्त-माइन्ड भी कहेंगे, मुसलमान-माइन्ड भी कहेंगे, बौद्ध-माइन्ड भी कहेंगे । मतलब कि हिन्दू-माइन्ड का सही अर्थ समझना है। हिन्दू-शब्द के साथ कोई अनादर नहीं है। हिन्दू-धर्म सर्व-समावेशक (inclusive) है - तत्त्वतः। आचारतः नहीं। तत्त्व और आचार में बड़ा अन्तर है, जैसे कि दूसरे धर्मों में भी है । किन्तु जहाँ तक तत्त्व का सम्बन्ध है, वहाँ तक तो हिन्दू-धर्म के तत्त्वज्ञान का नाम ही 'वेदान्त' है। यानी वेदों का अन्त । इसका मतलब है, बाइबिलांत, कुरानांत, धम्मपदांत, सभी का अन्त। पुरानी काल्पनिक मान्यताएँ टूट जाती हैं और मनुष्य का जो मूल आत्मस्वरूप है इसका चिंतन होता है । यह हिन्दू-विचार है और ऐसे हिन्दू-माइन्ड का मुझे अभिमान है । इसी प्रकार सब धर्मों के मूलभूत विचार हमें ग्रहण कर लेने हैं।



गीता ने भगवद्भक्त का वर्णन करते हुए 'अ-निकेत' यानी जिसका घर नहीं, ऐसे विशेषण का उपयोग किया है। ज्ञानेश्वर महाराज ने उसका उलटा अर्थ किया है - 'यह विश्व ही मेरा घर, ऐसी जिसकी स्थिर मति है।' हिन्दू-धर्म भी इसी अर्थ से 'अ-निकेत' है और इसलिए सार्वभौम है।

हिन्दू-धर्म का मूल विचार वैश्वानर तत्त्व पर आधारित होने से हिन्दू-धर्म स्वभाव से ही मानव-धर्म बना है। मन ने भी व्यापक कल्पना की है -

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

- इस देश में यानी आर्यावर्त में जन्मे महापुरुषों से पृथ्वी के सभी मनुष्य आचरण सीखेंगे।

वेदों में **पञ्चजनाः यज्ञियासः** - यानी यज्ञ के योग्य पंचजन ऐसा उल्लेख आया है। पंचजन का मतलब है श्वेत, रक्त, पीत, श्याम - ये चार वर्ण के लोक और अन्य जो बचे हैं वे पंचम। यानी सारा मानव-समाज पंचजनों में आता है। गीता में भगवान् के शंख को पाञ्चजन्य नाम दिया है। इसलिए हिंदू-धर्म का संदेश समस्त मानव-जाति के लिए है।

इस प्रकार हिन्दू-धर्म मूलतः मानव-धर्म है। हिन्दू-धर्म में सिर्फ दो बातें मुख्य हैं : एक, ब्रह्मविद्या, जिसे वेदान्त कहते हैं और दूसरी, भूतदया। ये दो बातें जहाँ न हों वह हिन्दू-धर्म नहीं हो सकता। शंकराचार्य ने एक स्तोत्र बनाया है। हर दिन उनके मठों में इसका पाठ होता है। वह षट्पदी प्रार्थना है। इसमें एक श्लोक है - **अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम्। भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः॥** इसमें कहा है भगवन्! तू मेरी भूतदया का विस्तार कर, इसलिए 'ब्रह्मविद्या, भूतदया' इन दोनों शब्दों में हिन्दू-धर्म का सार आता है।

वैसे देखा जाय तो इन दो शब्दों में सभी धर्मों का सार भी मिल जाता है। हमें धर्म को मठों या मन्दिरों तक सीमित नहीं रखना है, न ही उसे स्थितप्रज्ञ के सिपुर्द कर देना है, बल्कि धर्म को हमें समाज के दैनंदिन व्यवहार में लाना है। जैसे हमें जमीन का वितरण करना है, सम्पत्ति का वितरण करना है, वैसे धर्म का भी समाजव्यापी वितरण कर देना है। 'मेरा धर्म क्या है?' - यह



किसी शास्त्रकार से पूछने की जरूरत नहीं, धर्मग्रंथों में ढूँढ़ने की भी जरूरत नहीं, यह तो मनुष्य को स्वयंभू ही समझ में आने की बात है। क्या कभी कोई माँ किसी शास्त्रकार से पूछने जाती है या किसी मनुस्मृति में देखने जाती है कि बच्चे को दूध पिलाना यह मेरा धर्म है या नहीं? अपना धर्म उसे सहज मालूम होता है। वैसे ही प्रेम, दया आदि धर्म भी मनुष्य को सहज रीति से स्फुरित होने चाहिए। इसलिए किसी गीता या मनुस्मृति में अथवा किसी शास्त्रकार को देखने, पूछने की जरूरत नहीं होनी चाहिए। ऐसा सहजस्फूर्त मानव-धर्म अब पनपना चाहिए।

ऐसा धर्म, जो मनुष्य के श्वासोच्छ्वास के साथ बुना जाय। श्वास लेना एक पलभर भी हम छोड़ नहीं सकेंगे। ऐसा ही धर्म होना चाहिए। मानव-धर्म छोड़कर एक क्षण भी मनुष्य टिक न सके। सम्प्रदायों से ऊपर उठा हुआ मानव-धर्म अब सर्वत्र फैलना चाहिए।

इसलिए हिन्दू-धर्म के राज्य की बात हम अपने दिल में से निकाल दें। अगर हिन्दू-धर्म का भला चाहते हैं तो सत्ता के साथ उसे जोड़ने का ख्याल न करें। सत्ता से धर्म फैलाने के प्रयोग इतिहास में हुए हैं, लेकिन उनसे धर्म की हानि हुई है। धर्म का उद्देश्य ही सत्ता से विपरीत है। धर्म और सत्ता दोनों का मेल ही नहीं है। जिन्होंने धर्म की खोज में जीवन लगाया वे सत्ता से अलग, दुनिया के सुख-दुःखों से परे रहकर चिंतन करते रहे और उस चिंतन के प्रभाव से धर्म की प्रभा फैली। धर्म-प्रचार के लिए उन्होंने सत्ता की इच्छा नहीं रखी, बल्कि उससे वे दूर रहे। हिन्दू-धर्म के प्रचार का काम शंकराचार्य से बढ़कर शायद किसीने नहीं किया है। उन्होंने लिखा है कि “धर्मतत्त्व के प्रचार का एकमात्र साधन बुद्धि है। अगर कोई नहीं समझता है तो बुद्धि से उसको समझाना है। फिर भी नहीं समझता तो फिर से समझाना है। बुद्धि के सिवा विचार-प्रसार का दूसरा कोई शस्त्र नहीं है। क्योंकि अज्ञान को ज्ञान ही मिटा सकता है।” धर्म आत्मा का विषय है, जिसका प्रचार चिंतन से, ज्ञान से, तपस्या से, अनुभव से ही होता है। इसलिए हिन्दू-धर्मवाले और सब धर्मवाले धर्म को सत्ता से जोड़ने की बात छोड़ दें। दोनों को जोड़ने जाते हैं तो धर्म की हानि करते हैं और उससे राज्य की भी हानि करते हैं। यह भी इतिहास ने देखा है। आज तो दुनिया का सारा विचार-प्रवाह ही इसके विरुद्ध है। हर एक इन्सान में समानता हो, सबको एक-सा न्याय मिले, कोई ऊँच-नीच न माना जाय, इस विचार से जो राज्य चलेगा वही टिकेगा। अगर राज्य को



टिकाना है तो धर्म के साथ उसे नहीं जोड़ना चाहिए। अगर धर्म को बढ़ाना है तो राज्य के साथ उसे नहीं जोड़ना चाहिए | दोनों अपनी-अपनी मर्यादा में अलग काम करते रहेंगे तो दोनों कामयाब होंगे।



१०. हिन्दू-धर्म की विश्वव्यापक व्याख्या

हिन्दू-धर्म की व्याख्या, जो मैंने अपने चिन्तन के लिए जेल में बनायी थी, इसमें मेरी कुछ विशेषता नहीं है। दूसरों द्वारा की हुई व्याख्याओं में से मैंने बटोर लिया है। पूर्णता के लिए कुछ नया जोड़ दिया है। कुल मिलाकर इसने मुझे समाधान दिया है। शायद दूसरों को भी वह समाधान दे सके। जो भी हो, व्याख्या इस प्रकार है:

यो वर्णाश्रम-निष्ठावान् गो-भक्तः श्रुतिमातृकः

मूर्तिं च नावजानाति सर्व-धर्म-समादरः।

उत्प्रेक्षते पुनर्जन्म तस्मात् मोक्षणमीहते

भूतानुकूल्यं भजते स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥

हिंसया दूयते चित्तं तेन हिन्दुरितीरितः।

ये संस्कृत श्लोक पढ़कर एक भाई ने एक पत्र मुझे लिखा है, जिसमें पूछा है कि आपने ये श्लोक कहाँ से उद्धृत किये हैं और आप छूत-अछूत-भेद मिटानेवाले और धर्मातीत-सरकार को माननेवाले हैं। आपके उन विचारों का इस व्याख्या में प्रकट हुई श्रद्धा के साथ कैसे मेल बैठता है?

यह एक सनातनी भाई के आक्षेप हैं। इससे उल्टे दूसरे एक भाई ने यह पूछा था कि यह आपकी वर्णाश्रम-निष्ठा सर्वोदय के साथ कैसे मेल खाती है?

इन दोनों के उत्तर में मैं इस व्याख्या का थोड़े में विवरण ही कर देता हूँ, जिससे मुझे आशा है कि मेरा काम हो जायगा।

१. यो वर्णाश्रम-निष्ठावान्-जो वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्म में निष्ठा रखता है।

'वर्ण-धर्म' यानी जन्म, शिक्षण और परिस्थिति के कारण जिसे जो सहज कर्तव्य प्राप्त होता है, वह निष्ठापूर्वक करना और इस तरह अपना-अपना काम करनेवाले हरएक की सामाजिक प्रतिष्ठा और पारिश्रमिक समान होंगे, इस विचार को मान्य करना।



'आश्रम-धर्म' यानी जीवन में संयम को प्रधान-पद देकर संयम की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ाते जाना और वय के मुताबिक गुरु-सेवा, कुटुम्ब-सेवा, समाज-सेवा और आत्म-चिन्तन को लक्ष्य करके वृत्ति-संशोधन और जीवन-परिवर्तन करना।

२. गो-भक्त: - जो गो-सेवा में मानता है। 'गो-सेवा' यानी मानवता के विकास के लिए गाय को पशु-सृष्टि का प्रतिनिधि मानकर मानव-कुटुम्ब में स्थान देकर उससे उचित सेवा लेते हुए गाय की आखिर तक उत्तम हिफाजत करना और वैज्ञानिक बुद्धि से गाय को स्वावलम्बी बनाना, जिससे वह किसीको भाररूप महसूस न हो।

३. श्रुतिमातृक: - जो श्रुति को मातृवत् आदरणीय समझता है।

'श्रुति' यानी वेदोपनिषदादि मूल ग्रंथों में तथा मनु-व्यासादि शिष्टों, कपिल-पतंजलि आदि दर्शनकारों, बुद्ध-महावीर आदि नीति-विचारकों, शंकर-रामानुजादि सम्प्रदाय-प्रवर्तकों, ज्ञानदेव-तुलसीदास आदि सन्तों के वचनों में हृदयेन अभ्यनुज्ञातः अर्थात् मानव को हृदयंगम होनेवाला सर्वाऽविरोधी, सर्व-समन्वयकारी जो सत्यांश भरा हुआ है।

'मातृवत् आदरणीय समझना' यानी माता के वचनों का हम जिस तरह आदरपूर्वक अनुशीलन करते हैं, वैसे ही उपरि-निर्दिष्ट श्रुति का अनुशीलन करना और यथासम्भव उसके विचारों का अनुसरण और परिवर्धन करने की कोशिश करना है।

४. मूर्ति च नावजानाति - जो मूर्ति की अवज्ञा नहीं करता।

'मूर्ति' यानी (अ) सामान्यतः चराचर समग्र सृष्टि या उसका कोई भी अंश और (आ) विशेषतः परमेश्वर की उपासना के लिए उन-उन उपासकों ने स्वीकृत की हुई प्रतिमाएँ, चित्र, संकेत या मंत्र और शब्द।

'अवज्ञा न करना' यानी सब व्यक्त सृष्टि अव्यक्त परमेश्वर का ही आविर्भाव है, ऐसा समझकर किसीको हीन-बुद्धि से न देखना और दूसरों की उपासनाओं की कद्र करना, चाहे वे उपासनाएँ अपने लिए आवश्यक या अनुकूल न हों।

५. सर्व-धर्म-समादरः - जो सब धर्मों का सम्यक् और समान आदर करता है।



‘धर्म’ यानी (अ) सामान्यतः उस-उस मनुष्य की उस-उस प्रकृति के विकास और संशोधन के लिए जरूरी साधन-मार्ग और (आ) विशेषतः भिन्न-भिन्न महात्माओं, पैगम्बरों और प्रणालियों द्वारा प्रचलित और दुनिया के भिन्न-भिन्न मानव-समूहों द्वारा स्वीकृत वैदिक, भागवत, जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, ख्रिस्ती और इस्लाम आदि विश्व में प्रचलित धर्म।

‘सम्यक् आदर’ यानी सत्यासत्यविवेक रखते हुए पूज्यभाव।

‘समान आदर’ यानी किसीको ऊँच या नीच नहीं समझना, बल्कि भिन्न-भिन्न भूमिकाओं और दृष्टिकोणों पर अवस्थित समझना।

६. उत्प्रेक्षते पुनर्जन्म – जो पुनर्जन्म को मानता है।

‘पुनर्जन्म’ यानी इस देह के अन्त के साथ जीव के जीवन का अन्त नहीं होता है, ऐसी मूलभूत श्रद्धा। जब तक सर्वविकाररहित होकर जीव पूर्ण परिशुद्ध नहीं होता है, तब तक उसको अपना विकास-प्रयत्न जारी रखना ही है, चाहे स्थूल देह लेकर, चाहे सूक्ष्म देह में।

७. तस्मात् मोक्षणमीहते – जो उस (पुनर्जन्म) से मुक्त होने की इच्छा रखता है।

‘मुक्त होने की इच्छा’ यानी जिसके कारण व्यापक-समष्टि से अलग एक संकुचित देह में जीव को परिवेष्टित होकर-रहना पड़ता है, अर्थात् जिसके कारण मैं और तू या अपना और पराया इस तरह का भेद-निर्माण होता है, उस अविद्या-अहंकारादि मोहजाल से छूटने की अभिलाषा।

८. भूतानुकूल्यं भजते – जो सर्व भूतों के अनुकूल बरतता है

‘भूत’ यानी (अ) सामान्यतः सर्व प्राणिमात्र।

(आ) विशेषतः मानव-समाज।

‘अनुकूल बरतना’ यानी जैसे अपने को सुख-दुःख हैं, वैसे ही दूसरों को भी हैं, इसका ख्याल रखकर व्यवहार करना। हरएक को जीवन का उतना ही अधिकार है, जितना अपने को है, इस बात को मानना। अपने जीवन के लिए दूसरे के जीवन पर आक्रमण न हो, इसका ख्याल रखना।



हिन्दू-धर्म के आदिकाल से अभी तक के समूचे विचार-प्रवाह को देखकर और अनेक विद्वानों और श्रेष्ठ पुरुषों ने हिन्दू-धर्म की व्याख्याएँ समय-समय पर प्रकट की हैं उनको पचाकर यह अष्टविध लक्षण बनाये गये हैं। आखिर की एक पंक्ति में हिन्दू शब्द की व्यापक 'निरुक्ति' बतायी है। उसका विवरण लिखने के पहले 'निरुक्ति' शब्द का भी अर्थ समझ लेना ठीक होगा।

निरुक्ति और व्युत्पत्ति में फरक है। व्युत्पत्ति व्याकरण का विषय है, निरुक्ति आध्यात्मिक होती है। व्युत्पत्ति सामान्यतः धातुमूलक होती है, निरुक्ति अक्षर पर आधार रखती है, अर्थात् वह काल्पनिक होती है। चिन्तन की सुलभता के लिए अक्षरों पर बैठायी हुई वह एक उपकारक कल्पना होती है।

अब निरुक्ति और उसका विवरण -

हिंसया दूयते चित्तं स वै हिन्दुरितीरितः - चूँकि हिंसा से उसका चित्त दुःखित होता है, उसे हिन्दू कहते हैं।

हिं = हिंसया, हिंसा से। दु = दूयते, (चित्त) दुःखित होता है।

'हिन्दू' शब्द कहाँ से आया, किसने बनाया, किस पर से बनाया, इत्यादि ऐतिहासिक चर्चा का इस निरुक्ति के साथ कोई ताल्लुक नहीं है। ऐतिहासिकों की कल्पना में वह शब्द प्रादेशिक बनता है। यह निरुक्ति उसको विश्वव्यापक अर्थ देती है।



११. भारत : समन्वय की भूमि

भारत में दुनिया के सब मजहबों की कौमें रहती हैं । इस देश ने सबको प्रेम से स्थान दिया है । कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गाया है, "भारत इन्सानों का एक समुद्र है।" समुद्र में जैसे सब तरह की नदियाँ आकर मिलती हैं, वैसे ही यहाँ भी सब कौमें आकर मुहब्बत से रही हैं । तिलक महाराज ने कहा था कि हमारे पूर्वज उत्तर ध्रुव से आये थे । उत्तर में ऋषि-देश है, जिसे रशिया कहते

हैं । कश्मीर कश्यप ऋषि का स्थान है । कश्मीर से लेकर कश्यप समुद्र (कास्पियन सी) तक कश्यप ऋषि ने पराक्रम किया। दुनियाभर के लोग यहाँ आये और उन्हें हमने जज्ब कर लिया । कभी-कभी आरंभ में कुछ कशमकश भी चली, लेकिन हमने प्रेम से सबको हजम कर लिया।

यहाँ ईसाई, मुसलमान आदि जो भी आये, उन पर यहाँ की हवा का रंग चढ़ा । उनमें भारत की सिफत आयी । जब तक अंग्रेजों ने यहाँ आकर फूट नहीं डाली थी तब तक यहाँ हिंदू और मुसलमान बड़े प्रेम से रहते थे। उनके नाम मिले-जुले रहते थे। नानक और कबीर ने समझाया था, भगवान् "ना मंदिर में, ना मस्जिद में, ना काबे में" है। वह तो घर-घर में है। सूफियों ने भी एकता पैदा की । हिंदू और मुसलमानों की कारीगरी, दस्तकारी आदि सब मिली-जुली बन गयी।

इंद्रधनुष के समान भारत में अनेक रंग हैं और वे एक-दूसरे से इस तरह मिले हैं कि पता ही नहीं कि एक कहाँ खतम होता है और दूसरा कहाँ से शुरू होता है। इस तरह एक खूबसूरत नज्जारा बन गया है। कवि ने जो गाया है **सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा**, इसमें कुछ सार है। इतना मिला-जुला समाज दुनिया के दूसरे देशों में नहीं है । पूरा योरोप जब एक राष्ट्र बनेगा, तब वह भारत की बराबरी कर सकेगा।

लेकिन सियासतदाँ का नजरिया तंग होता है और वे उसी दायरे में सोचते हैं । अपनी-अपनी पार्टी बन गयी तो बस, वे उतने के ही लिए सोचते हैं । कोई हिंदुओं की सोचते हैं, कोई मुसलमानों की । कोई मध्ययुगीन की बातें करते हैं कि यहाँ हमारा राज्य था। विज्ञान के जमाने



में तंग नजरिया नहीं चलेगा। छोटे दिल से काम नहीं चलेगा। इसलिए धर्म के मामले में राजनीति के झगड़े कभी न लाये जायँ।

राजकीय झगड़ा चालू हो, तब भी धर्म के विषय में आदर बना रहना चाहिए। मैं धर्म को माता की उपमा देता हूँ। माता बच्चे को सहज मिलती है। जिसको जो मिली उससे वह पालन-पोषण पाता है। हमें अपनी माता की इज्जत और सेवा करनी चाहिए। जो अपनी माता की इज्जत करता है उसका स्वभाव ही होता है कि वह दूसरों की माताओं की भी इज्जत करता है। जो ऐसा नहीं करता है वह खुद की माता की भी इज्जत नहीं करेगा।

हमारे देश की एक खूबी है, लेकिन वही खामी हो जाती है, अगर हम अक्ल से काम न करें। संगीत के सात स्वर होते हैं। सातों मिलकर सुंदर संगीत बनता है। लेकिन ये एक-दूसरे के खिलाफ जायँ, राग के अनुकूल न हों, तो विसंवाद होगा, गाने का लुत्फ – मजा नहीं रहेगा। एक ही स्वर रहेगा तो संगीत नहीं बनेगा। इसलिए अनेक स्वर होने चाहिए और उनमें संवाद भी होना चाहिए। संवाद हो तभी मीठा संगीत निर्माण होता है। संगीत में इस प्रकार की जो कला होती है, वैसी कला हिंदुस्तान में भी होनी चाहिए। हिंदुस्तान में अनेक धर्म हैं, अनेक पंथ हैं। उनका ठीक उपयोग करने का फन और सिफत होनी चाहिए। तभी वह खूबी कायम रहेगी। हम यह न समझें कि यह मुख्तलिफ जमातें हमारे मार्ग में रोड़े डालेंगी। ये रोड़े नहीं, सीढ़ियाँ हैं।



१२. सभी धर्मों का नजदीक से परिचय हो

हिन्दुस्तान में मुख्तलिफ जमातें रहती हैं। बहुत प्यार से रहती आयी हैं। फिर भी जहालत (मूर्खता) की वजह से कभी-कभी कुछ बातें हो जाती हैं। उसका यही इलाज है कि हम एक होकर मिल-जुलकर रहें और समझ लें कि अल्लाह का पैगाम उसके सब रसूलों ने कहा है। हर जमात में रसूल हो गये हैं—हिंदुस्तान में, अरबस्तान में और यूरोप में भी। कई नबी, वली तथा साधु-संत हुए हैं, जिन्हें सभी लोग नहीं जानते। परमात्मा का फ़ज़ल है कि हर देश में ऐसे लोग आये हैं। उन्होंने जो किताबें लिखी हैं, उन्हें लोग पढ़ते हैं। कोई कुरआन पढ़ता है, कोई बाइबिल, कोई वेद, कोई रामायण, गीता या गुरुग्रंथ साहब पढ़ता है। लेकिन मैं इनमें से हर किताब पढ़ता हूँ। सब किताबों का मुताला मैं कई बार कर चुका हूँ। इन सभी किताबों में मुझे एक ही चीज मिलती है - रूहानियत। फिर भी इन किताबवालों ने इन किताबों को झगड़ा करने का एक साधन, एक जरिया बना लिया है। किताबों के नाम से ही झगड़े होते हैं।

आज विज्ञान बहुत बढ़ा हुआ है। इन्सान के साथ इन्सान एक हो रहा है। बड़े बड़े देश १५-२० मिनट के फासले पर आ गये हैं। जो समुद्र पहले देशों को तोड़नेवाले थे, वे अब जोड़नेवाले बन गये हैं। अमेरिका और जापान दोनों देश पड़ोसी बन गये हैं। जिस जमाने में कुल दुनिया के लोगों का एक-दूसरे के साथ ताल्लुक आ रहा है, उस जमाने में भी जो किताबों के नाम लेकर झगड़े करेंगे, वे खुद तो खतम हो ही जायेंगे, बल्कि किताबों के साथ खुद भी खतम हो जायेंगे।

ये लोग किताबें नहीं पढ़ते इसलिए झगड़ते हैं। मैंने कुरआनशरीफ पढ़ा है। उसमें अनमोल रत्न पाये हैं। गीता में गोता लगाया है और वहाँ से जवाहर पाये हैं। बाइबिल पढ़ी है और उसमें बहुत अच्छी नसीहत पायी है। गुरु नानक, मुहम्मद पैगम्बर, ईसामसीह, मूसा, बुद्ध भगवान्, राम, कृष्ण - ये सब लड़नेवाले नहीं थे। फिर भी उनके भगत कहलानेवाले आपस में लड़ते रहते हैं। एक-दूसरे को उभाड़ते रहते हैं।



सभी किताबों में हमेशा ईमान पर जोर दिया गया है और ईमान के साथ-साथ नेक आमाल, अच्छे काम पर भी जोर दिया है। कुरआनशरीफ में कहा है - **अल्लजीना आमनु व आमिलुस्सालिहात व तवासौ बिल्हक व तवासौ बिस्सब्र**—भले लोग वे होते हैं, जो अल्लाह पर ईमान रखते हैं और नेक काम करते हैं। नेक काम न करें तो ईमान रखने का कोई मानी ही नहीं है। एक-दूसरे को हक पर चलने की हिदायत देते रहते हैं। एक-दूसरे को जगाते रहते हैं। कहीं कोई गलत रास्ते पर जाय तो एक-दूसरे को बचाते हैं। एक-दूसरे को सब्र देते हैं। कहीं मेरा सब्र टूट जाता है, तो आप मुझे बचाते हैं और आपका टूट जाता है, तो मैं बचाता हूँ। पक्का यकीन कर लें कि हम एक होकर रहेंगे और मजहब के नाम से कोई फर्क नहीं करेंगे।

एक शायर का मशहूर जुमला है - **मजहब नहीं सिखाता, आपस में बैर रखना**। मैं इसे बहुत ज्यादा अहमियत नहीं देना चाहता। बल्कि मैं कहना चाहता हूँ कि **मजहब हमें सिखाता, आपस में प्यार करना**। बैर मत करना इतना ही काफी नहीं है, प्यार भी करना चाहिए। सब पर प्यार करने के वास्ते मजहब निकला है। कुरआनशरीफ में कहा है कि अरबों के लिए हमने अरबी जबान बोलनेवाला रसूल भेजा है, ताकि आप उसका पैगाम समझें। अल्लाह ने हर कौम और हर जबान बोलनेवालों के लिए रसूल भेजे हैं और कहा है कि हम रसूलों में कोई फर्क नहीं करते-'ला नुफर्रिकु बैन अहदिम मिर्रुसुलिह'। इसलिए हम रसूलों के नामों पर लड़ते रहेंगे तो हमारी जिंदगी नापाक बनेगी और हम बर्बाद हो जायेंगे।

हम एक-दूसरे की किताब पढ़ेंगे तो दिल के साथ दिल जुड़ जायगा। चार गवाह एक ही बात कहते हैं तो वह पक्की हो जाती है। सबमें कहा है कि जितने अच्छे, भले और नेक राह पर चलनेवाले लोग हैं, सारे एक ही हैं। हमें सचाई पर चलना चाहिए। एक-दूसरे की मदद करनी चाहिए। दुःखियों के लिए हमदर्दी, रहम रखनी चाहिए। ये बातें जिनकी जिंदगी में आयी, वे सब एक ही जमात के हैं।

इस्लाम के विषय में हमारे देश में काफी गलतफहमियाँ हैं। यहाँ मुसलमान बादशाहों ने जो जुल्म किये उसे हमने इस्लाम के साथ जोड़ दिया। लेकिन कुरान में तो कहा गया है कि सभी जमातें एक हैं। इस्लाम में बिल्कुल साफ-साफ कहा गया है कि जबरदस्ती करना अन्याय है।



परमेश्वर को एक मानना और सबसे प्रेम करना, यही इस्लाम ने कहा है। इस्लाम यानी ईश्वर-शरणागति और इस्लाम यानी शांति। इससे अलग तीसरा अर्थ इस्लाम का नहीं है।

भिन्न-भिन्न धर्म के अनुयायियों में ज्यादातर ऐसा ख्याल बना रहता है कि अपने धर्म के महापुरुष परिपूर्ण थे, करीब-करीब परमेश्वरस्वरूप ही थे। मुसलमान मानते हैं कि मुहम्मद पैगम्बर पूर्ण पुरुष थे और इसमें किसी प्रकार की पूर्णता का विकास करना बाकी नहीं बचा था। इसी प्रकार ईसाई मानते हैं कि ईशु परिपूर्ण मानव थे।

लेकिन इस बारे में इस्लाम जो बात करता है, वह मुझे बड़ी महत्त्वपूर्ण लगती है। इस्लाम ने कहा है कि मुहम्मद एक मनुष्य था। इन्हें ईश्वर के पद से जोड़ना नहीं चाहिए। ईश्वर तो एक ही है और अद्वितीय है। इसकी बराबरी कोई मनुष्य नहीं कर सकता। **ला इलाह इल्लिल्लाह, महम्मदुर रसूलिल्लाह**। अर्थात् अल्लाह एक ही है, उसकी जगह कोई नहीं ले सकता। मुहम्मद पैगम्बर उसका पैगाम लानेवाला रसूलमात्र है, सेवकमात्र है।

इससे भी आगे कुरान में एक सुन्दर आयत आती है - 'हम किसी भी रसूल में भेद नहीं करते।' मतलब दुनिया में सिर्फ एक रसूल मुहम्मद ही नहीं, दूसरे भी बहुत रसूल हो गये। ईसा भी एक रसूल है और मूसा भी, और दूसरे भी कई रसूल हो गये, जिनके नाम तक का हमें पता नहीं। हम रसूलों में भेद नहीं करते, यह इस्लाम का फेथ (श्रद्धा) है, विश्वास है। मुझे लगता है कि हिन्दुओं की भी ऐसी ही निष्ठा है। वे कहते हैं कि दुनिया के सत्पुरुषों ने जो रास्ता बताया है, वह एक ही है। इनमें जो भेद पैदा होता है, वह तो हमारी संकुचित वृत्ति के कारण ही पैदा होता है।

सभी धर्मों में कितना साम्य है, यह देखने लायक है। इस्लाम कहता है, 'बिस्मिल्ला' और हिन्दू कहता है, 'ॐ'। बिस्मिल्ला पद में तीन शब्द हैं: बि, अस्मि और अल्ला। इसका अर्थ है - अल्ला के नाम से। ॐ यानी परमेश्वर का नाम। जितने भी शुभकार्य शुरू करने होते हैं, वे ईश्वर का संकल्प कर शुरू करते हैं। इसलिए सभी शुभ और धार्मिक कार्य हिन्दू ॐ से आरम्भ करता है और मुसलमान बिस्मिल्ला से। ॐ और बिस्मिल्ला, दोनों निराकारवाचक शब्द हैं। ईश्वर के सिवा इस्लाम में अनेक मलक, फरिश्ते और हिन्दुओं में असंख्य देवी-देवताएँ हैं। लेकिन इनमें से



कोई भी ईश्वर का स्थान नहीं ले सकता। ईश्वर और अल्लाह, दोनों एक हैं। ऐसे एक ही निराकार ईश्वर के लिए कहे गये ये शब्द हैं। ईश्वर को संस्कृत में ॐ कहते हैं और अरेबीक में अल्लाह। दोनों एक ही हैं।

गीता का सार एक वाक्य है : **मामेकं शरणं ब्रज** – एक परमेश्वर की शरण में आओ। बिल्कुल ऐसा ही सार कुरान में कहा है। कुरान में इस्लाम का अर्थ बताया है। इस्लाम यानी ईश्वर की शरण में जाना। 'इस्लाम' शब्द में सलम धातु है, जिसका अर्थ है, शरण में जाना। इसीसे सलाम शब्द बना है। सलाम यानी शांति। इस्लाम शब्द भी इसीसे बना है। इस्लाम यानी परमेश्वर की शरण में जाना। परमेश्वर की शरण में जाओ तो शांति मिलेगी। गीता में एक श्लोक में कहा है: **तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत**—हे अर्जुन, तुम सर्व भाव से परमेश्वर की शरण लो ! इसका परिणाम क्या होगा? **तत् प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्** – तो इनकी कृपा से तुम्हें शाश्वत शांति मिलेगी।

इस प्रकार शरणता और शांति, ये दोनों चीजें एक ही श्लोक में गीता में हैं और यही कुरान में 'इस्लाम' इस एक शब्द में है। भक्ति के साथ सदाचार होना ही चाहिए, यह गीता का रुख है। कुरान में भी कहा है कि **अल् लजीन आमनु व अमीलुस स्वालीहाती** – जो ईश्वर पर ईमान रखता है और नेक काम करता है, यही मुसलमान की व्याख्या है। ईश्वर पर भरोसा करिये, परोपकार में लगे रहिये, पूरा बोझ परमेश्वर पर छोड़ दीजिये, किसीकी आसक्ति मत रखिये – यही गीता का और यही कुरान का उपदेश है।

इसलिए इस्लाम के बारे में गलतफहमी रखना और सभी मुसलमान बुरे हैं ऐसा मन में मानना, यह बिल्कुल गलत है। परमेश्वर ने किसी एक जमात को खराब बनाया, ऐसा कहना ईश्वर पर बहुत बड़ा आरोप माना जायगा।

बचपन में मुझे किसीने कहा कि इस पेड़ पर भूत रहता है, तो मुझे डर लगा। लेकिन मेरी माँ ने कहा कि भूत-वूत कुछ नहीं है, जब होगा तब तो दिखेगा न? तुम वहाँ पास जाकर देख लो। मैंने पेड़ के पास जाकर देखा तो पता चला, भूत तो नहीं है, अच्छा सुन्दर वृक्ष है। नजदीक



पहुँचने से डर खतम हो गया। इसीलिए सभी धर्मों के नजदीक जाकर परिचय कर लेना चाहिए। ऐसा करने से गलतफहमी दूर होती है।

सभी धर्मों की इस प्रकार नजदीक से पहचान करने की कोशिश मैंने की है। अलग-अलग धर्म-ग्रन्थों का सार निकालकर मैंने समाज के सामने रखा है। इसीसे लोग सभी धर्मों का परिचय कर सकेंगे। कुरान-सार मैंने पेश किया, मुस्लिम-समाज ने उसे मान्य किया है। सर्वत्र उसका सत्कार हुआ है। 'ख्रिस्त-धर्म-सार' रोम में पोप को भेजा गया था तो उनसे आशीर्वाद भी प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार सिक्खों के 'जपुजी' और बौद्धों के 'धम्मपद' का सम्पादन करके मैंने समाज के समक्ष रखा है।

हमें एक साथ रहना है तो एक-दूसरों के धर्म को समझ लेना जरूरी है। इससे बहुत-सी गलतफहमियाँ दूर हो जाती हैं। इस्लाम इन्सान-इन्सान में फर्क नहीं करता। दूसरे मजहबवालों से मुहब्बत के साथ रहने को कहता है। कुरान के विचार से परमेश्वर पर भरोसा रखना, हक पर चलना और सब्र रखना यही असली 'दीन' है। खुदा पर भरोसा रखने के साथ-साथ नेक काम करने की बात हर जगह जोड़ दी है। मजहब तो लोगों ने अपने-अपने ख्यालों के अनुसार अलग-अलग बनाये हैं। लेकिन असली 'दीन' जिसे कहते हैं, एक ही है। जैसे लिबास अलग-अलग पहने जाते हैं, लेकिन उनका मकसद एक ही होता है – हवा से शरीर को बचाना, वैसे ही मजहबों की बात है। यही भारत के सभी संतों ने जाहिर किया है। सभी ने हमें सिखाया है कि “खुदा से डरो, और किसीसे न डरो, न किसीको डराओ।” ईश्वर पर भरोसा रखनेवालों की यही निशानी है।



१३. सर्व-धर्म-समभाव की वृत्ति पनपे

जहाँ सब धर्मों के लोग रहते हैं वहाँ का जीवन आनन्दमय होना चाहिए। क्योंकि सब धर्मों ने परस्पर प्रेमभाव रखने की ही शिक्षा दी है। लेकिन दुर्दैव की बात है कि आज भारत में ऐसी हवा चली है कि कभी धार्मिक उत्सव आता है तो डर-सा छा जाता है। दशहरा आता है, ईद आती है तो डर हो जाता है कि न मालूम अब क्या होगा। लेकिन इस वृत्ति का धर्म से कोई संबंध नहीं है। धर्म के नाम का उपयोग करके राजकीय महत्त्वाकांक्षा रखनेवाले लोगों को बहकाते हैं।

भारत में अनेक उपासनाएँ चलती हैं। इसलिए एक-दूसरों के धार्मिक उत्सवों में हम शरीक हों और सबको अपने दिल में जगह दें। इस तरह एक-दूसरों के उत्सवों में भाग लेना मुफीद है।

एक भाई ने मुझे पूछा कि “दूसरों के धार्मिक उत्सवों में जायेंगे तो नुकसान नहीं होगा? क्या स्वधर्म-निष्ठा में कमी नहीं आयेगी?” ऐसा होने का कोई कारण नहीं है। मान लो कि मैं अपने मित्र के यहाँ गया, उनकी बूढ़ी माता के दर्शन हुए और उनको मैंने आदरपूर्वक प्रणाम किया, तो क्या उससे अपनी माता के प्रति मेरा आदर कम होनेवाला है? ऐसा तो देखा नहीं जाता है। मातृत्व का आदर करके जब मैं दूसरे की माता को प्रणाम करता हूँ तो अपनी माता के प्रति मेरा आदर और भी दृढ़ होता है। वैसे ही दूसरों के धार्मिक उत्सवों में जब हम शरीक होते हैं, तो देखते हैं कि जो ईश्वर-निष्ठा हमारे धर्म ने हमें सिखायी है वही निष्ठा वहाँ दीखती है – चाहे उसका ढंग दूसरा हो – तो हमारी स्वधर्म-निष्ठा बढ़नी चाहिए।

मेरे धर्म में जो भक्ति सिखायी है वही इस्लाम में, वही ईसाई-धर्म में, वही सिक्ख-धर्म में सिखायी है, ऐसा अनुभव आता है। निष्ठा का सवाल अनुभव का है।

दूसरे धर्म का अध्ययन करने से हमारा दिल विशाल बनता है। जप, उपवास, दान, उत्सव, यात्रा आदि का महत्त्व सभी धर्मों में है। इस्लाम में इन साधनों को 'रुकने दीन' यानी धर्म के खम्भे कहा है।

आखिर धर्म का कार्य मनुष्य के हृदय को विशाल बनाना ही है। सर्वत्र हरि विराजमान है, धर्म यही सिखाता है। व्यवहार में व्यक्तियों का परिचय हमेशा उनकी उत्तम मनःस्थिति में नहीं



होता, जब कि धार्मिक उत्सवों में उनका जो परिचय होता है वह उनकी उत्तम हालत में तथा विशुद्ध रूप में होता है। और जब विशुद्ध परिचय होता है तो हृदय में श्रद्धा बढ़ती है, हृदय विशाल बनता है और हरि-दर्शन में मदद होती है।

एक सवाल हो सकता है। दूसरों के धार्मिक उत्सवों में जाकर यदि कोई चीज हम वहाँ देखें, जो हमारे धर्म में न दिखाई देती हो, तो उस धर्म की तुलना में हमारी स्व-धर्म-निष्ठा डिग नहीं जायगी? मैं कहता हूँ कि रीति-रिवाजों की तुलना करके अगर दूसरे धर्म में कोई अच्छा रिवाज दिखाई दे, जो हमारे धर्म में नहीं है तो वह धर्म-सुधार का कारण बन जाना चाहिए। उससे धर्म-परिवर्तन या अपने धर्म की निष्ठा कम होने की बात नहीं आती। मान लो कि अपने बगीचे में मैंने अच्छे-अच्छे फल लगाये हैं, लेकिन जब मैं दूसरों का बगीचा देखने गया तो वहाँ कुछ दूसरे भी अच्छे फल, जो मेरे बगीचे में नहीं हैं, मुझे दीखे तो उसका अनुसरण करके अपने बगीचे में भी वैसे फल लगाऊँगा या उसे उखाड़ ही दूँगा? इससे ध्यान में आयेगा कि हम सबको धर्म-सुधार का काम करना होगा। तुलना से डरना नहीं होगा। बुद्धि की कसौटी से डरेंगे तो इस जमाने में श्रद्धा टिकनेवाली नहीं है और टिकी भी तो किसी काम की नहीं होगी।

हमारे पूर्वजों ने धर्म-सुधार का कार्य निरंतर किया है। दूसरे धर्मों का अभ्यास करेंगे, उनमें जो अच्छी चीज होगी वह हम लेंगे, हमारे धर्म में जो अच्छी चीज होगी वह वे लेंगे और इस तरह प्रेमपूर्वक सबकी उपासनाओं का अभ्यास करेंगे।

जब हम सर्व-धर्म-समभाव की बात करते हैं तो दूसरे धर्मों का परिचय भी उसके लिए जरूरी है। सर्व-धर्म-समभाव में चार चीजें आवश्यक मानता हूँ। पहली चीज है स्वधर्म-निष्ठा। दूसरी, अन्य धर्म का आदर। तीसरी, सर्व-धर्म-सुधार, जिसके बगैर मनुष्य आगे नहीं बढ़ सकता। चौथी बात, जो इन तीनों में से सहज ही निकलती है – अधर्म का विरोध। ये चारों चीजें एकत्र होती हैं तब सर्व-धर्म-समभाव सिद्ध हो सकेगा।

मैंने सभी धर्मों का खूब प्रेम से और गहराई से अध्ययन किया है। सभी धर्मों की विशेषताएँ देखने की कोशिश की है और उनका सार ग्रहण किया है। सभी धर्मों की उपासना-प्रणाली भिन्न-



भिन्न है, वह सभी मुझे परायी नहीं, मेरी ही लगी हैं। हिन्दू सूर्य को देखकर प्रार्थना करता है, इसीसे सुबह पूर्व दिशा में मुँह करता है और शाम को पश्चिम की ओर। मुसलमान कहता है कि काबा की ओर मुँह करके बैठना। काबा इन्हींका सबसे बड़ा धर्म-स्थल है। इसका स्मरण करना उन्हें प्रिय लगता है। इसीसे वह पश्चिम की ओर मुँह करके नमाज पढ़ते हैं। इससे क्या बिगड़ा? कोई कहेगा, घुटने टेककर प्रार्थना करिये, तो कोई कहेगा पद्मासन लगाकर करिये। मुझे दोनों में कोई एतराज नहीं है। मैं तो अपनी पदयात्रा में चलते-चलते भी प्रार्थना करता था। मैंने बीच में चरखे से कताई करते-करते प्रार्थना चलायी थी। यानी प्रार्थना, उपासना आदि पद्धतियों में तो ऐसे छोटे-छोटे फर्क रहेंगे। रहने दीजिये, इसमें कोई तकलीफ नहीं। वह रीति-रस्मों के भेद हैं, धर्म के भेद नहीं। सभी धर्मों की राह एक ही है।

आज ऐसी हालत है कि धर्म के नाम से झगड़े चलते हैं। दो धर्मों के बीच झगड़े होते हैं और एक ही धर्म के अन्दर भी परस्पर झगड़े होते हैं। हिन्दू आपस में झगड़ते हैं, मुसलमानों में शिया और सुन्नी के बीच झगड़ा है। ख्रिस्तियों में भी रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टण्ट के बीच झगड़ा है। आयरलैण्ड में तो कैथलिक और प्रोटेस्टण्ट के बीच भारी झगड़ा हुआ। वह भी धर्म के नाम पर, ईसा के नाम पर! जिस ईसामसीह ने कहा कि यदि कोई एक गाल पर थप्पड़ मारे, तो दूसरा गाल आगे करो और स्पष्ट शब्दों में कहा कि शत्रु से प्रेम करो, उसी ईसा के नाम पर झगड़े चले। इस प्रकार धर्म के नाम पर बड़ा गलत काम दुनियाभर में चला है। आज की यह हालत हमें बदलनी है।

दो धर्मों के बीच कभी भी झगड़ा नहीं होता। जो झगड़ा होता है वह दो अधर्मों के बीच होता है और सभी धर्मों का अधर्म के साथ झगड़ा है। तो मूल में जो काम करना है वह यह है कि धर्म के जो उत्तम तत्त्व हैं उन्हें समाज में सर्वत्र फैलाना है और समाज में से अधर्म को खतम करना है। प्रेम, दया, विश्वबन्धुत्व, भक्ति आदि धर्म के उत्तम तत्त्व समाज में पूरी तरह फैल जायँ। हमें सभी को धर्मनिष्ठ बनाना है।



धर्म-तत्त्व के बारे में धर्म-धर्म के बीच कोई झगड़ा नहीं। मनुष्य मनुष्य की तरह रहे यह सिखाने के लिए ही तो धर्म है और ऐसे धर्म का हमें गौरव है। धर्म-धर्म के बीच का भेद भी मिटा देना है। हमें जैसे जमीन सबकी माननी है, इसी प्रकार धर्म भी सभी का बनाना है।

मेरा तो कहना ऐसा है कि एक आदमी कोई विशेष उपासना-पद्धति को ही स्वीकार कर ले, ऐसा भी क्यों होना चाहिए। हर एक आदमी को जब भी और जैसी उपासना करनी हो, उसे सभी प्रकार से स्वातंत्र्य होना चाहिए। मंदिर में जानेवाला मस्जिद में न जाय और मस्जिद में जानेवाला चर्च में न जाय, ऐसा क्यों? किसीको भी कहीं भी जाने से रोकना नहीं चाहिए। जिसको जो रीति पसन्द हो उसी रीति से वह ईश्वर की उपासना करे। उपासना के बारे में कोई बन्धन न हो। यह सभी उपासना-पद्धतियाँ एक-दूसरे की परिपोषक हैं, ऐसा ही मुझे लगा है।

मैं तो और भी एक कदम आगे बढ़ना चाहूँगा। इन्सान का धर्म भी उसके जन्म से ही क्यों तय होना चाहिए? हर एक व्यक्ति कुछ समझदार बने, तब १८ साल की उम्र में अपने-आप पसन्द कर ले कि स्वयं को कौन-सा धर्म स्वीकार करना है। अथवा चाहे तो कोई भी धर्म स्वीकार न करे, ऐसा होना चाहिए। व्यक्ति का धर्म जन्मजात नहीं, अपनी खुद की पसन्दगी का हो। तो, एक ही घर में अलग-अलग धर्म के व्यक्ति हों, ऐसा भी सम्भव है। जैसी जिसकी पसंद ! जन्म से ही फलों धर्म नहीं मानना चाहिए।

एक ही घर में अलग-अलग धर्म के व्यक्ति प्रेम से साथ रहें, यह कल्पना भी कैसी सुखद लगती है। प्राचीन काल में हिन्दुस्तान में इसी प्रकार देखा गया था। एक ही परिवार में बाप हिन्दू हो तो बेटा बौद्ध और दूसरा बेटा जैन, इसमें कोई विरोध नहीं होता। तो फिर आज ऐसा क्यों न बन सके कि एक ही घर में एक भाई हिन्दू, दूसरा मुसलमान तो तीसरा ख्रिस्ती हो। ऐसा विचार-स्वातंत्र्य क्यों न हो? इस बारे में गम्भीर चिंतन होना चाहिए। एक ही घर में अच्छा हिन्दू, अच्छा मुसलमान और अच्छा ख्रिस्ती एकत्र रहते हों, इसमें क्या हर्ज है? एक ही घर में अनेक धर्म खुशी के साथ एकत्र रह सकते हैं। इसके लिए अब हमारी मानसिक तैयारी होनी चाहिए।



किसी धर्म का किसी धर्म से विरोध नहीं है। सबका किसीसे विरोध है तो वह अधर्म से है। अधर्म का विरोध करने में सबको एक होना चाहिए। दुनिया में नास्तिकता फैल रही है। उसका प्रतिकार कौन करेगा? सब धर्म आस्तिक हैं, उन्हें नास्तिकता के खिलाफ लड़ना है। अगर वे आपस में लड़ते रहेंगे तो खुद खतम हो जायेंगे और दुनिया में नास्तिकवाद फैल जायगा। इसलिए एक-दूसरों के धार्मिक उत्सवों में हम शरीक हों और सबको अपने दिल में जगह दें। तभी भारत दृढ़ बनेगा और दुनिया का मार्गदर्शक होगा।



१४. धर्म को त्रिविध कैद से मुक्त करें

आज पूरी दुनिया में दो प्रकार की संस्थाएँ काफी प्रबल बन गयी हैं। एक है धर्म-संस्था और दूसरी है शासन-संस्था। दोनों संस्थाएँ खड़ी की गयी थीं लोकसेवा के ख्याल से। दोनों की जरूरत पड़ी और खड़ी की गयीं। लेकिन आज ये दोनों संस्थाएँ समाज के लिए समस्या बन गयी हैं। इसलिए समाज को इन दोनों संस्थाओं के प्रभाव से छुड़ाना अत्यन्त जरूरी बन गया है।

मेरे कहने का मतलब ऐसा नहीं कि समाज को धर्म से अलग करना है, बल्कि मैं कहता हूँ कि धर्म तो चाहिए ही, लेकिन अब ये धर्म-संस्थाएँ नहीं चाहिए। मैं जैसे-जैसे विचार करता हूँ उतना ही मेरा यह विश्वास पक्का होता जाता है कि धर्म-संस्था चाहे किसी भी उद्देश्य से खड़ी की गयी हो, आज यदि चालू रहें तो इससे समाज को लाभ के बजाय नुकसान ही ज्यादा होगा।

आज दुनिया की क्या हालत है? चार बड़े धर्म हैं: क्रिश्चन-धर्म, इस्लाम-धर्म, हिन्दू-धर्म और बौद्ध-धर्म। इनके अलावा दूसरे छोटे-छोटे धर्म भी हैं। इन सभी धर्मवालों ने अपनी-अपनी धर्म-संस्थाएँ बनायी हैं। यूरोप में पोप काम करता है और चर्च की बड़ी मजबूत रचना हुई है। जैसे हर एक जिले का जिलाधीश होता है, वैसे उधर हर एक जिले के लिए भी चर्च का अधिकारी होता है। इसी प्रकार की रचना इस्लाम में भी है। स्थान-स्थान पर इसकी मस्जिदें हैं, जहाँ मुल्ला रहता है। इनकी ओर से कुछ धर्म-प्रचार और उत्सव वगैरह भी चलते हैं। हिन्दुओं में भी मंदिर और मठ द्वारा यही काम होता है। यही हालत बौद्धों की भी है।

ये सभी धर्म अहिंसा, शांति, प्रेम आदि में विश्वास करनेवाले हैं। फिर भी हम देखते हैं कि दुनिया में शांति-स्थापना के काम में इन सभी धर्म-संस्थाओं का कहने लायक कोई प्रभाव नहीं हो रहा है। एक ईसाई देश दूसरे ईसाई देश पर हमला कर दे तो पोप को कोई पूछता नहीं कि ऐसा करना ठीक है या नहीं। मानकर ही चलते हैं कि पोप का अधिकार अलग है, हमारा अलग। अपने व्यवहार में धर्म का कोई प्रभाव मान्य नहीं करता। इतना ही नहीं, बल्कि लड़ाई चलती हो और वह दो ईसाई राष्ट्रों के बीच चलती हो, तो दोनों पक्ष अलग-अलग चर्च में अपने विजय के लिए प्रार्थना करते हैं, ऐसा भी होता है। समाज के व्यवहार में इन धर्म-संस्थाओं का कोई खास



प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। बल्कि जो प्रभाव पड़ रहा है वह अच्छा नहीं है, यही चिन्ता का विषय है।

खासकर श्रद्धावानों पर इन धर्म-संस्थाओं का बुरा प्रभाव पड़ रहा है। इन्होंने ऐसा मान लिया है कि धर्म का जो कुछ भी कार्य है, उसकी जिम्मेदारी इन धर्म-संस्थाओं के पुरोहितों की है। वे इसीलिए ही वहाँ नियुक्त किये गये हैं। एक सुन्दर मन्दिर बनवा दिया, उसके लिए जमीन दे दी, पैसा दिया, पूजा-अर्चा की व्यवस्था कर दी तो हमारा धर्म-कार्य समाप्त हो गया। धर्म के लिए हमें भी कुछ करना होता है, यह विचार श्रद्धालुओं ने छोड़ दिया है। जो श्रद्धालु नहीं, वे तो न पुरोहित को पूछते हैं, न ही धर्म को। लेकिन जो श्रद्धालु हैं, उन्होंने धर्म की, धर्म-प्रचार की, आचार की और चिन्तन-मनन की जिम्मेदारी को गुरु, पुरोहित, मुल्ला और पादरी पर छोड़ी है और स्वयं मुक्त हो गये हैं। इससे धर्म को भारी नुकसान पहुँचा है।

आशा तो थी कि मंदिर, मठ, मस्जिद, चर्च वगैरह से धर्म सर्वत्र फैलेगा। मेरा ऐसा कहना नहीं कि इनके द्वारा कुछ भी काम नहीं हुआ। थोड़ा-बहुत हुआ है, लेकिन बहुत ही कम। उल्टा, इनके द्वारा अधर्म ही ज्यादा फैला है। इसलिए आज इन धर्म-संस्थाओं के प्रभाव से मानव-जाति को मुक्त करने की अत्यंत जरूरत है।

आज धर्म, जैसे धर्म-संस्थाओं में और इन संस्थाओं के मठाधिपतियों के हाथ में कैद है, वैसे हमने धर्म को मंदिर, मस्जिद, चर्च में कैद कर रखा है। मंदिर-मस्जिद में गये, तो धर्म का आचरण कर लिया। बाजार में और रोज के व्यवहार में धर्म की जरूरत नहीं। वहाँ तो झूठ और अधर्म जैसे चलता हो वैसे भले ही चलता रहे। धर्म वहाँ कहीं बीच में नहीं आता। बाजार में धर्म नहीं ले गये। धर्म बाजार में नहीं आने दिया तो बाजार का अधर्म मंदिरों में पहुँच गया। बाजार ही मंदिरों में घुस गया। होना तो यह चाहिए था कि धर्म को बाजार में जाना था, किन्तु धर्म जा न पाया तो मंदिरों में से भी धर्म अदृश्य हो गया। बाजार में खुला अधर्म है, तो मंदिरों में ढँका-छुपा अधर्म है। आज ऐसी हालत हुई है।



इसलिए धर्म को धर्म-संस्थाओं से, पादरी, पुरोहित, मुल्लाओं के हाथों से, मंदिर, मस्जिद, चर्च की चारदीवारों की कैद से अब पूर्णतः मुक्त करना है और सही धर्म-भावना समाज में सर्वत्र फैलानी है।



१५. धर्म-समन्वय संभव

हमारी इस भारत-भूमि पर भगवान् का महान् उपकार है कि यहाँ असंख्य सत्पुरुष आये और इन्होंने समाज में धर्म-तत्त्व का प्रचार-प्रसार किया। इस्लाम, ख्रिस्ती और पारसी धर्म यहाँ बाहर से आये। इसी प्रकार यहाँ के बुद्ध-धर्म का विचार बाहर के देशों में फैला। यानी यह भारत-भूमि विविध धर्मों के समन्वय की भूमि है। धर्म-धर्म के बीच आदान-प्रदान की भूमि है। इन दिनों ऐसी इच्छा आहिस्ता-आहिस्ता पनप रही है कि आज के इन सभी अलग-अलग धर्मों का समन्वय हो जाय, सभी धर्मों का एक मुक्त और व्यापक नये धर्म में परिवर्तन हो जाय, सभी मनुष्यों को इकट्ठा करनेवाला एक उत्तम धर्म खड़ा हो। ऐसी इच्छा आज अनेक की है और वह अवश्य ही पूरी होगी। भले ही इसमें कुछ समय लगेगा, लेकिन आखिर में यह होना है।

सभी धर्म एक-दूसरे के उत्तम तत्त्व को अपना लेंगे तो सभी धर्मों को परिपूर्णता प्राप्त होगी और सभी धर्मों का सुन्दर संगम होगा। भारत की विशेषता है कि अच्छे विचारों का वह निरंतर समन्वय करते आया है। शंकर आदि महान् आचार्यों ने अपनी बुद्धि इसीमें लगायी थी। जैनों ने तो समन्वय का सिद्धांत ही मान लिया है। प्राचीन काल में उपनिषद्, गीता आदि का समन्वय हुआ। बाद में मध्ययुग में शैव, वैष्णव आदि पंथों का हुआ। भारत ने हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी आदि धर्मों को यहाँ स्थान दिया। वह इसी समन्वय की भावना से हो सका। लेकिन सर्व-धर्म-समन्वय का प्रत्यक्ष कार्य अब तक नहीं हुआ है। वह अब करना है।

परिणाम ऐसा आना चाहिए कि भारत का हिन्दू-धर्म एक विशेष हिन्दू-धर्म बना रहे, भारत का इस्लाम-धर्म एक विशेष इस्लाम-धर्म बना रहे, भारत का ख्रिस्ती-धर्म एक विशेष ख्रिस्ती-धर्म बना रहे। सभी धर्मों की अलग-अलग खूबी होती है। इस्लाम में एकता का ख्याल है, समानता की भावना है, ऊँच-नीचता का स्थान नहीं है। दुनिया में जहाँ कहीं कोई बीमार होते हैं, उनकी खिदमत में, सेवा में ईसाई पहुँचते हैं। ईसाई अपने जीवन और कर्म से बहुत बड़ी नसीहत देते हैं। हिन्दू-धर्म में वेदान्त और ब्रह्मविद्या है। बौद्ध-धर्म में करुणा और बुद्धि पर जोर दिया है। सिखों ने वीरता और पराक्रम के साथ भक्ति को जोड़ दिया है। उनके जो बड़े-बड़े योद्धा थे, वे ही उत्तम ज्ञानी हो गये। इस तरह हर धर्म में जो लेने लायक है, उसे हमें लेना चाहिए। भारत-भूमि के समन्वय



के एक विशेष रंग का स्पर्श सभी धर्मों को हो। इसीसे एक विशेष ताकत प्रत्येक धर्म को मिलेगी, प्रत्येक की प्रभा बढ़ेगी।

इस्लाम-धर्म और ख्रिस्ती-धर्म को यहाँ की पृष्ठभूमि स्वीकार कर लेनी चाहिए। यहाँ के मुसलमान और यहाँ के ख्रिस्तियों की परम्परा भारत के बाहर की है, फिर भी वे भारत को अपने धर्म का और अपने जीवन का हिस्सा समझें। भारत की ब्रह्मविद्या को ये दोनों अपना लें, इनके बंधुत्व और सेवावृत्ति की मूल बुनियाद तो ब्रह्मविद्या ही है। पड़ोसी से प्रेम करो, दुश्मन से प्रेम करो, मगर क्यों? इसका जवाब भारत की ब्रह्मविद्या देती है। उस ब्रह्मविद्या को यदि यहाँ के ईसाई और मुसलमान स्वीकार करे लें, तो इनके अपने विचार को भी ताकत मिलेगी। दूसरी ओर, इस्लाम-धर्म के बंधुत्व को और ईसाई-धर्म की सेवावृत्ति को अपनाने से हिन्दू-धर्म की ब्रह्मविद्या भी बलवती होगी। सभी धर्म ज्यादा-से-ज्यादा पुष्ट होंगे और परिपूर्णता की ओर बढ़ते जायेंगे।

मेरा ऐसा भी मानना है कि समाज अब इस दिशा में आगे बढ़े कि मनुष्य पशु की हत्या न करें। पशु को अपना भोजन न मानें। भारत का यह एक विशेष सन्देश है, जो यहाँ की ब्रह्मविद्या से निकला है और वह सभी को अपनाने जैसा है। मनुष्य के लिए सबसे उत्तम आहार फलाहार है, शाकाहार है। मानवता के विकास के लिए मनुष्य की परिपूर्णता और सर्वधर्म एकरस हों, इसके लिए जरूरी है कि मनुष्य मांसाहार पूर्णतः छोड़ दे। यह बात किसी पर लाद देने की नहीं, प्रत्येक को प्रेम से समझानी है। मैंने अलीगढ़ जाकर कहा था कि इस्लाम को कभी-न-कभी मांसाहार छोड़ना ही पड़ेगा। मैंने प्रेम से यह बात कही और उन्होंने भी शांति और प्रेम से मेरी बात सुनी।

मेरी यात्रा के दरमियान, एक स्थान पर गाय-की कत्ल हुई थी। इस कारण वहाँ काफी तंगदिली खड़ी हुई थी। मैं वहाँ पहुँचा, शुक्रवार का दिन था। मस्जिद में पंद्रह-बीस गाँव के लोग इकट्ठे हुए थे। मैंने मस्जिद में ही सभा की और कहा कि यदि अल्लाह को गाय-बकरी के बलिदान से ही खुशी होती है तो वह पैगंबरों को क्यों भेजता, इसके लिए तो कसाई ही काफी था। कुरान में स्पष्ट कहा है कि अल्लाह प्रेम का भूखा है, बलिदान का नहीं। वैसे तो अल्लाह मांस भी खाता नहीं, केले भी नहीं खाता। लेकिन हम ये चीजें उसे देते हैं, क्योंकि हम ये खाते हैं तो भगवान् को



अर्पण करके खाते हैं। इसलिए लोगों को मांसाहार से छुड़ाना चाहिए। अल्लाह तो धर्म-निष्ठा और प्रेम चाहता है।

मैंने अजमेर की दरगाह में प्रवचन दिया था। वहाँ लोगों ने कितना प्यार बरसाया मुझ पर! दस हजार मुसलमानों ने मेरा हाथ चूमा। मैंने उन्हें इस्लाम को कभी-न-कभी परदा छोड़ना पड़ेगा, ऐसा कहा। स्त्रियाँ अल्लाह की मस्जिद में भी न आने पायें, इसका क्या मतलब? अल्लाह के पास तो स्त्री पुरुष का भेद ही नहीं होना चाहिए। अत्यन्त प्रेम से यह बात मैंने उनके सामने रखी।

इस प्रकार प्रेमपूर्वक हरएक को समझाना है। पुरानी संकुचित कल्पनाएँ और रीति-रस्में धर्म के नाम पर पकड़े रखना, यह कोई धर्म-लक्षण नहीं है। धर्म का तो सातत्य से शोधन होना चाहिए। तभी धर्म विकासशील रहेगा।

हिन्दू-धर्म में भी कई सनातन-धर्मी लोगों ने अपनी संकुचित मान्यताओं से चिपके रहकर हिन्दू-धर्म को भारी नुकसान पहुँचाया है। ऐसा करके अपने ही पैरों पर उन्होंने कुठाराघात किया है। सच देखें तो मंदिर, हमारे ग्रंथ, जात-पाँत, जाति-धर्म इत्यादि में बिल्कुल कोई भी भेदभाव न रखकर सभी जिज्ञासुओं के लिए खुले होने चाहिए। सभी मन्दिरों की पवित्रता इसीमें ही है कि जो कोई भक्तिभाव से उसमें प्रवेश करना चाहे, उसे बेरोकटोक उसमें प्रवेश मिले। तभी मन्दिरों का पतित-पावनत्व सार्थक होगा।

धर्म का निरन्तर शोधन होता रहे, शुद्धि होती रहे। हमें देखना है कि हिन्दू उत्तम हिन्दू बनें, ख्रिस्ती उत्तम ख्रिस्ती बनें, ऐसा होगा तो हमारा काम बन जायगा। किसीको धर्म बदलने की बिल्कुल जरूरत नहीं। बल्कि धर्मान्तर की प्रक्रिया बिल्कुल गलत है। धर्मान्तर की बात में मेरा कतई विश्वास नहीं। जगह-जगह ख्रिस्ती-धर्म का जिस प्रकार प्रचार होता है, उससे ईसामसीह प्रसन्न होते होंगे, ऐसा मैं नहीं मानता।

हमारा देश सेक्युलर कहलाता है, असाम्प्रदायिक कहलाता है। यहाँ सभीको विचार-प्रचार की पूर्ण आजादी है, फिर भी मेरा मानना है कि धर्मान्तर को कानून के जरिये बन्द ही करवाना चाहिए। ऐसा करने से असाम्प्रदायिकता को कोई बाधा नहीं पहुँचेगी। संख्या बढ़ाने से किसी धर्म



का विस्तार नहीं होता। धर्म तो एक निर्मल परिशुद्ध तत्त्व है। आदमी की इंसानियत का विस्तार ही सभी धर्मों का कर्तव्य है। और ऐसे धर्मों का सार एक ही है। ऐसे धर्मों के बीच कोई विरोध नहीं। जो कोई अपने धर्म का निष्ठा से आचरण करेगा उसे स्वाभाविक ही दूसरे धर्मों के प्रति आदर रहेगा। जिसे अन्य धर्मों के लिए अनादर होगा, वह अपने धर्म की आचार-विधि निष्ठापूर्वक नहीं कर रहा, ऐसा ही मानना होगा। वह न तो उत्तम हिन्दू है, न ही उत्तम मुसलमान है, न ही उत्तम क्रिश्चन है, ऐसा मानना होगा।

सभी धर्मों का समन्वय, अर्थात् सभी धर्मों का सार ग्रहण कर लेना, असार छोड़ देना। इसे मैं 'वेदान्त' कहता हूँ। सार ले लिया तो वेद खतम, वेदों का अन्त हो गया। इसी प्रकार 'कुरानांत' - सार ले लिया तो कुरान खतम। 'बाइबिलांत' - सार ले लिया और बाइबिल खतम। सार लेना, असार छोड़ देना। नहीं तो धर्म का सार तो याद नहीं रहता और गौण चीजें लेकर झगड़े बने रहते हैं। इसलिए धर्मों का सार लेकर सर्व-धर्म-समन्वय मजबूत होना चाहिए और वह आज या कल होकर ही रहेगा, ऐसा मैं निश्चित मानता हूँ।



१६. सभी धर्मों का सार यानी अध्यात्म

इस सृष्टि में अपार विविधता है। किसी एक आदमी का चेहरा दूसरे आदमी से मिलता-जुलता नहीं। हरएक का चेहरा अलग है। एक पेड़ पर जो पत्ते होते हैं, उनमें हरएक पत्ते की अपनी-अपनी विशेषता होती है। इस प्रकार समस्त सृष्टि में अपार विविधता है।

लेकिन यह विविधता, विभिन्नता बाहर की है। अन्दर तो हम अनोखी एकता का ही अनुभव करते हैं। भूख-प्यास सभी में एक-सी देखने में आती है। प्रेम का भी सभी अनुभव करते हैं। कई भावनाएँ समान रूप से, सभी में देखने को मिलती हैं। इसलिए शास्त्रकारों ने समझाया है कि अपने निजी अनुभव से आदमी को दूसरों का ख्याल करना चाहिए। सभी धर्मों में कहा है कि आत्मौपम्यभाव से सबके साथ बर्ताव करें।

धर्म के बारे में भी यही बात लागू होती है। धर्म की इतनी सारी विविधता में भी एकता देखनी है। सभी धर्मों के प्रति अपनत्व का भाव महसूस करना है। इसका मुझे अनुभव है। जब मैंने 'कुरान शरीफ' हाथ में लिया तो देखा कि जैसे भक्तिभावपूर्वक मैं बेद पढ़ता हूँ, उतने ही भक्तिभाव से कुरान भी! कुरान के कई हिस्से पढ़ते समय मैं एकदम गद्गद हो जाता था, मेरी आँखें भर जाती थीं। जब तक मुझे विश्वास नहीं हुआ कि मैं इससे एकरूप हुआ हूँ, इसके रंग में रँग गया हूँ, तब तक मैंने चुनाव का काम नहीं किया। जब मुझे वैसी प्रतीति हुई तभी कुरान-सार का काम उठाया।

कुरान-सार जब प्रकाशित हुआ, तब पाकिस्तान में 'डान' अखबारवालों ने इस पर आक्षेप किया कि 'कुरान' और 'सार'? और वह भी एक काफिर करे? किन्तु जब पुस्तक देखी, तब हिन्दुस्तान के मुसलमानों ने स्वीकार किया कि वाजिब हुआ है। आगे रावलपिंडी के एक अच्छे अखबार में भी बड़ी सुन्दर समीक्षा दी गयी थी। मतलब यह कि वह सार स्वीकृत हो गया। यह एक बहुत बड़ी घटना हुई कि कुरान का भी सार निकाला जा सकता है। यह सम्भव है, असम्भव नहीं, अर्थात् धर्म-विरुद्ध नहीं।



विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के दिन अब लद चुके हैं। अब एक मानव-धर्म पनपना चाहिए, सभी धर्मों का समन्वय होना चाहिए। सभी धर्मों को एकत्रित करने की दृष्टि से गांधीजी ने सर्व-धर्म प्रार्थना चलायी थी। सभी धर्मों से थोड़ा-थोड़ा लेकर प्रार्थना करते थे । मैंने मौन प्रार्थना चलायी । मौन में हरएक अपनी-अपनी रीति से अपने-अपने इष्टदेव का स्मरण कर सकते हैं। पूर्व पाकिस्तान की यात्रा के दौरान भी प्रवचन के बाद मैं सभी जगह मौन प्रार्थना करवाता था। यह तो सिर्फ प्रार्थना की बात हुई । लेकिन सभी धर्म-ग्रंथों का क्या करना, यह प्रश्न था। धर्म-ग्रंथों का सार निकालकर समाज के सामने रखने से समन्वय में मदद होगी, या तो धर्म-ग्रंथ के बारे में बिल्कुल मौन रखने से मदद मिलेगी? सर्व-धर्म-समन्वय की दृष्टि से क्या उपयुक्त होगा?

इस बारे में बहुत चिन्तन चला। मुझे लगा कि 'यह सब छोड़ दें ।' लेकिन ऐसा करके अलग हो जाऊँगा, तो यह व्यक्तिगत मुक्ति होगी । जब मैं व्यक्तिगत मुक्ति नहीं, सामाजिक मुक्ति की आवश्यकता मानता हूँ, तो इन सब धर्मग्रंथों का सार निकालकर समन्वय होना चाहिए। क्योंकि करोड़ों लोगों की बुद्धि पर जिसका सत्प्रभाव पड़ता है, (बुरा प्रभाव भी होता है, कुछ अच्छा भी होता है) उसे छोड़ देने के लिए समाज से कहना ठीक नहीं है । विनाश आसान है, निर्माण कठिन । यह संचित पुण्य है, उसे व्यर्थ नहीं गँवा देना है । इसीलिए मैंने सोचा कि धर्म-ग्रंथों का सार ग्रहण कर इसका समन्वय करना चाहिए।

शंकराचार्य ने अपने युग में यही किया । उन्होंने उपनिषद् इत्यादि का समन्वय किया। उन दिनों इस बारे में झगड़े चलते थे। हाँ, उपनिषद् भी आपस में झगड़ते थे ! बृहदारण्यक विरुद्ध छांदोग्य, गीता विरुद्ध छांदोग्य इत्यादि उस समय में चलता था। इन सभी के बीच मेल बैठाने के लिए शंकराचार्य ने समन्वय किया। इस प्रकार आज भी समन्वय की आवश्यकता है, ऐसा निर्णय मैंने किया। सभी सम्प्रदायों की उपाधि से इसी प्रकार से हम मुक्त होंगे और सभी धर्मों के ऐसे सार से ही अध्यात्म पनपेगा।



१७. धर्म के पाँच स्तम्भ

धर्म में कुछ चीजें बदलती रहेंगी, जमाने के मुताबिक और मुल्क के मुताबिक। लेकिन कुछ चीजें कॉमन रहेंगी और कायम रहेंगी। कुरान शरीफ में आया है कि किताबों के दो हिस्से होते हैं। एक 'उम्मुल' किताब यानी किताब की मा। और कुछ होते हैं 'मुनशाबिहात', जिसके बारे में मुख्तलिफ राय हो सकती है। इसलिए जो उम्मुल किताब होती है उस पर अधिक जोर देना चाहिए। सामान्यतः धर्म के पाँच हिस्से होते हैं।

पहला हिस्सा है श्रुति का, अनुभूति का, परमात्म-दर्शन का। कई एक महापुरुष ऐसे होते हैं, जिनके दिल और दिमाग परमात्मा की दिशा में मुड़े रहते हैं और जिन्हें परमात्म-दर्शन की कुछ अनुभूति होती है। परमात्मा कोई मामूली चीज नहीं कि मनुष्य की अनुभूति से उसका सही-सही स्वरूप जाना जाय और वही उसका सत्य स्वरूप है ऐसा पक्का कहा जाय। इसलिए किसी व्यक्ति को परमात्मा का दर्शन हुआ, इसका अर्थ इतना ही है कि उसे परमात्मा के एक अंश का ही दर्शन हुआ। यह आंशिक दर्शन रहेगा, समग्र नहीं। फिर भी ऐसी अनुभूति से व्यक्ति का जीवन क्षणार्ध में बिल्कुल बदल जाता है। आज तक दुनिया के महापुरुषों को ऐसी अनुभूति हुई है।

यह अनुभूति अलग-अलग प्रकार की हो सकती है। क्योंकि प्रत्येक का अनुभव व्यक्तिगत होता है। अनुभूतियाँ अलग होने के बावजूद वे एक-दूसरे के खिलाफ नहीं होतीं। ऐसा प्रत्येक दर्शन हमें परमात्मा की कुछ झलक दिखाता है। हिन्दू, इस्लाम, ख्रिस्ती आदि धर्मों में परमात्मा की अनुभूति का जो ऐसा हिस्सा होता है, वह सभी धर्मों की सामूहिक मिलकियत है। मानव-जाति की सामूहिक विरासत है।

धर्मकथाएँ धर्म का दूसरा हिस्सा है। कुरान में इसे कसस कहा है। कसस यानी कथा। इब्राहीम की कथा, मूसा की कथा, नल-दमयंती की कथा, हरिश्चन्द्र की कथा, युसुफ और जुहेवा की कथा। अलग-अलग धर्म-ग्रंथों में ऐसी कथाएँ हैं।

यह कथा का हिस्सा भी सभी की सम्पत्ति है। ये कथाएँ सभी धर्मवाले पढ़ें और इनसे बोध ग्रहण करें। राम की कथा से हिन्दू बोध ग्रहण करेगा और मुसलमान भी। जिससे बोध मिलता



हो, उसके हकदार सभी धर्मवाले हैं। तो धर्म की बोध-कथाओं का हिस्सा भी सभी धर्मों की सामूहिक विरासत है। मानव-जाति की भी सामूहिक विरासत है।

धर्म का तीसरा हिस्सा है, नीति-विचार का। धर्म का यह एक बहुत बड़ा और व्यावहारिक जीवन के महत्त्व का अंग है। हमेशा सच बोलना, प्रेम करना, दूसरों की मदद करना, एक-दूसरे के सुख-दुःख में भागीदार बनना, मेहनत करके खाना, आलस्य नहीं करना, चोरी नहीं करना, दिल में करुणा रखना, ऐसी नीति की बातें सभी धर्मों में हैं और प्रत्येक धर्म-ग्रंथ में देखी जाती हैं। ऐसी सभी बातें मैंने कुरानशरीफ में, गीता में, धम्मपद में, बाइबिल में, हर एक धर्म-ग्रंथों में पढ़ीं। ये सब ग्रंथ एक ही गवाही देते हैं। सभी की गवाही से बात मजबूत होती है। जैसे सत्य की बात सभी धर्म-ग्रंथों में पढ़ने से मेरा सत्य पक्का होगा। मानवता के ये बुनियादी गुण ऐसे हैं कि उनके विरोध का प्रश्न ही नहीं खड़ा होता। उनके आचरण में मनुष्य का कल्याण है। इसलिए धर्म का यह नीति-विचार का हिस्सा भी सभी धर्मों की सामूहिक विरासत है, मानव-जाति की सामूहिक विरासत है।

धर्म का चौथा हिस्सा है, उपासना की पद्धतियाँ और विधियाँ। परमात्मा की प्रार्थना करने की अलग-अलग पद्धतियाँ अलग-अलग धर्म में प्रचलित हुई हैं। कोई सामने मूर्ति रखकर प्रार्थना करेगा, कोई बिना मूर्ति करेगा, कोई पूर्व दिशा में मुँह करेगा, कोई पश्चिम दिशा में। कोई खड़ा रहकर प्रार्थना करेगा, कोई घुटने टेककर। देश-काल की जरूरत के मुताबिक समाज में प्रचलित रीति-रस्म से अलग-अलग उपासना-विधियाँ बनायी गयीं और उस-उस धर्म से जुड़ गयीं।

उपासना की विधि में थोड़ा-बहुत फर्क रहे, इसमें कुछ गलत नहीं। इससे कुछ भी नुकसान नहीं। उदाहरणार्थ, प्रभात का समय है, सूर्योदय हो रहा है, तब पूर्वदिशाभिमुख होकर हिन्दू उपासना करेगा। शाम को वही हिन्दू सूर्यास्त के समय पश्चिम की ओर देखकर प्रार्थना करेगा। मुसलमान पवित्र काबा जिस दिशा में है उस पश्चिम दिशा में मुँह करके नमाज पढ़ेगा। उपासना-विधि में ऐसी विविधता रहे, इसमें कुछ गलत नहीं। उपासना की पद्धति का आग्रह रखना नहीं चाहिए।



फिर भी उपासना की ऐसी पद्धतियाँ भी ढूँढ़नी चाहिए कि जिसमें सभी शामिल हों । प्रार्थना-उपासना की बात आयी कि हम अलग-अलग क्यों हो जाते हैं? भगवान् का नाम आया कि हम साथ छोड़ दें, यह तो बड़ी बदकिस्मती कहलायेगी । हम सभी कामों में इकट्ठे रहें और भगवान् का नाम लेने में ही अलग हो जायँ, यह तो जुल्म ही है । तो जहाँ सभी इकट्ठे मिल सकें, ऐसी सामूहिक उपासना भी ढूँढ़ निकालनी है। व्यक्तिगत उपासना की पद्धति अलग-अलग हो सकती है । अपनी-अपनी जमात का तरीका भी अलग-अलग हो सकता है। लेकिन सभी धर्मवाले साथ मिलकर उपासना कर सकें ऐसी विधि भी होनी चाहिए । सर्व-धर्म-प्रार्थना, मौन प्रार्थना आदि इसके लिए उपयोगी होंगी।

इसके अलावा आजकल की चालू विधियों में जो अधूरापन हो उसकी पूर्ति भी कर लेनी चाहिए। उदाहरणार्थ, हरिजनों को और विधर्मियों को मन्दिर-प्रवेश की बन्दी नहीं होनी चाहिए । ऐसे ही मुसलमानों की नमाज में बहनें सम्मिलित नहीं हो सकतीं, उसमें परिवर्तन करना होगा। भाई-बहनें सभी मिल-जुलकर ईश्वर की उपासना करें, ऐसा होना चाहिए।

धर्म का पाँचवाँ हिस्सा है, कानून। इसमें विरासत इत्यादि के कानून होते हैं । बाप की सम्पत्ति बेटे को कितनी मिले और बेटे को कितनी, शादी किस पद्धति से होनी चाहिए, मृत्यु के बाद दफनाना या दहन करना वगैरह । इसमें समझना यह है कि ये सब कानून और रीति-रस्में उस-उस जमाने में और उन-उन प्रदेशों में और उन-उन समाजों की परिस्थितियों के अनुरूप बने होते हैं। ती आज इनमें से कई एक पुराने कानून और रीति-रस्में जैसी थीं वैसे ही नहीं चल सकेंगी। आज के युग के अनुरूप और आज के समाज की परिस्थिति के मुताबिक इसमें आवश्यक परिवर्तन करना चाहिए। नागरिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले कानून हरएके धर्म में अलग-अलग हों, यह ठीक नहीं । इसके आगे हिंदू-लों, मुस्लिम-लों, ईसाइयों का लॉ ऐसा अलग नहीं चल सकेगा। क्योंकि लॉ को सेक्युलर माना जायगा। आज उसे नहीं माना जाता।

असाम्प्रदायिक राज्य में समान कानून हो, यह जरूरी है । विज्ञान की दृष्टि से भी रीति-रस्मों में परिवर्तन करने योग्य लगे वह करने की तत्परता रखनी चाहिए । आज की परिस्थिति के मुताबिक कानून नये सिरे से बनाने होंगे और वे यथासम्भव सर्वमान्य होने चाहिए।



इस प्रकार धर्म के मुख्य पाँच अंग हैं। पहले तीन अंग ऐसे हैं, जो सभी धर्मों की मानव-जाति को सामूहिक देन है। मानव-जाति की यह सामूहिक मौलिक विरासत है। धर्म में कोई भेद-भाव न मानकर हमें, सबको उसे अपना मानना है और इसमें वृद्धि करते रहना है। सभी धर्मों के इन त्रिविध अंगों के समन्वय से एक मानव-धर्म बनपेगा। चौथा उपासना का अंग वैविध्य में एकता का द्योतक है। इसमें विवेकपूर्वक थोड़े-बहुत सुधार हो सकते हैं। पाँचवाँ कानून का अंग स्थल-काल-परिस्थिति के मुताबिक परिवर्तनशील है। विज्ञान की दृष्टि से और परिस्थिति के मुताबिक उसमें परिवर्तन करते रहना है।



१८. सर्वमान्य आध्यात्मिक निष्ठाएँ

सभी धर्मों में कई समान आध्यात्मिक निष्ठाएँ मुझे देखने को मिलीं। इसे मैं अध्यात्म मानता हूँ। अध्यात्म में ये श्रद्धाएँ मुझे अभिप्रेत हैं। अध्यात्म मूलतः श्रद्धा का विषय है। सभी धर्म इसे मानते हैं।

१. निरपेक्ष नैतिक मूल्यों में श्रद्धा : एक श्रद्धा यह कि पूरे जीवन के लिए निरपेक्ष नैतिक मूल्यों पर श्रद्धा (फेथ इन दी एब्सोल्यूट मॉरल वैल्यूज) की जरूरत है। इस प्रकार के शाश्वत नैतिक मूल्यों को मानने में सब तरह से लाभ है, उसे तोड़ने में सब प्रकार से हानि है। यह श्रद्धा इसलिए कही जायगी कि आज के युग में और किसी भी काल में मानव-मन को निरपेक्ष नीति कभी जँची नहीं। कभी सच तो कभी झूठ, इस प्रकार की अवसरवादी मनोवृत्ति और दाम्भिक आचार नहीं चलेगा। हिंसा कुछ स्थानों में अनिवार्य मानी गयी थी। ऐसे ही जो नैतिक मूल्य शाश्वत माने जायेंगे, उनमें अपवाद निकालने की जरूरत मनुष्य को मालूम हुई। बुद्धि से यह सिद्ध करना अशक्य हुआ कि आप सत्य पर अड़े रहिये और आपका गला रेटा जा रहा है, फिर भी आप विजयी हैं। इसलिए इसमें श्रद्धा रखने की बात कही जाती है।

२. प्राणीमात्र की एकता और पवित्रता : यह दूसरी श्रद्धा है (यूनिटी एण्ड सैक्टिटी ऑफ लाइफ)। जीवन की एकता और पवित्रता पर विश्वास होना कठिन बात है, लेकिन वह आवश्यक है। जीवमात्र में एक ही तत्त्व विराजमान है और संपूर्ण जीवन पवित्र है। परिपूर्ण अर्थ में जीवन में सधना असंभव है। क्योंकि जीने के लिए हम जंतुओं का संहार करते हैं। असंख्य जंतुओं का हमसे विनाश होते रहता है और प्रत्यक्ष आचरण में ऊँच-नीच का और स्थूल-सूक्ष्म का भेद माना जाता है। फिर भी जहाँ तक संभव हो वहाँ तक इस श्रद्धा के पालन की कोशिश होती रहे।

३. मृत्यु के बाद भी जीवन की अखंडता : मृत्यु के बाद भी जीवन है। मृत्यु से जीवन खंडित नहीं होता (कॉन्टिन्यूइटी ऑफ दी लाइफ आफ्टर डेथ)। मृत्यु के बाद वह किस रूप में रहेगा यह तफसील का विषय है। बुद्धि से उसका निर्णय नहीं होनेवाला। तफसील में विचार-भेद



हो सकता है। लेकिन जीवन मृत्यु से खंडित नहीं होता, उसके बाद भी रहता है - चाहे सूक्ष्म रूप में रहे या स्थूल में रहे, निराकार रूप में रहे या साकार रूप में, देहधारी रहे या देह-विहीन रूप में ये छह भेद हो सकते हैं और होंगे - लेकिन जीवन अखंड है। जाहिर है कि यह विषय श्रद्धा का है। बुद्धि कुछ हद तक इसमें काम करेगी, फिर उसकी मर्यादा आ जायगी। जहाँ बुद्धि की मर्यादा आयेगी वहाँ श्रद्धा काम करेगी। इस प्रकार जिस व्यक्ति में श्रद्धा नहीं है, उसे आगे का ग्रहण नहीं हो सकेगा। जहाँ तक बुद्धि की पहुँच है, वहीं तक ग्रहण होगा।

४. विश्व में व्यवस्था और बुद्धि : विश्व में व्यवस्था है अर्थात् रचना है, बुद्धि है। (देअर इज अँन ऑर्डर इन दी वर्ल्ड) इतना कहने से ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध होता है। लेकिन उसे ईश्वर का नाम देने का आग्रह ईश्वर का अपना नहीं है, तो मेरा भी नहीं है। इसीका अर्थ होता है परमेश्वर पर श्रद्धा। व्यवस्था है, इसका यह अर्थ नहीं कि हम आप जो कुछ करते जाते हैं, वह सारा अपनी योजना से करते हैं। कुछ दूसरी योजना है, उसीके अनुसार सारा होता है। जेल के आँगन में घास से लिखा जाता था १९४५। यानी वह कटेगा और बाद लिखा जायगा १९४६। उस घास का जो तिनका था उसका अपना प्रयोजन है, लेकिन कुल मिलाकर सब तिनकों का प्रयोजन है १९४५ बनाना। वे तिनके यह जानते नहीं। तिनका आता है और जाता है, लेकिन सबका मिलकर एक प्रयोजन है कि जेल में कौन सा साल चल रहा है, यह दिखाया जाय। इसी तरह हम भी तिनके जैसे हैं। हम जानते नहीं कि इस सृष्टि में हमारा क्या प्रयोजन है। हम अपना-अपना प्रयोजन ही देखते हैं; लेकिन कुछ और प्रयोजन है, जिसके लिए सृष्टिकर्ता ने हमें पैदा किया है। लेकिन इतना मानना बस होगा और यह पर्याप्त होगा कि विश्व में एक रचना है, व्यवस्था है और बुद्धि है।

५. कर्म-विपाक : (एक्शन्स हैव देअर रिजल्टस्) यह अपरिहार्य है। मृत्यु के बाद भी कर्म के फल न टलते। हरएक कर्म का फल अवश्य मिलेगा; यहाँ नहीं तो वहाँ, दूसरे जन्म में मिलेगा। यह कर्म-सिद्धांत अटल है। लेकिन कई कर्म एक-दूसरे के कर्म से जुड़े हुए होते हैं, तो कई व्यक्तिगत। इसलिए मेरे सभी कर्मों का फल मुझे ही मिलेगा, आपको नहीं और आपके सभी कर्मों का फल आपको ही मिलेगा, मुझे नहीं, ऐसा नहीं है। कई एक कर्म सामूहिक होते हैं। ऐसे कर्मों का भोग भी सामूहिक ही होता है। फिर ईश्वर-कृपा के लिए भी अवकाश है।



६. पूर्णता का अनुभव सम्भव : मानव-जीवन में पूर्णता का अनुभव हो सकता है । व्यक्तिगत तौर पर हमने कई महापुरुष देखे हैं, सत्पुरुषों की संगति में रहने का अवसर हमें मिला है । फिर भी पूर्ण मानव मैंने नहीं देखा । लेकिन मानव-जीवन में पूर्णता का अनुभव हो सकता है, वह एक श्रद्धा का विषय है।

ऐसी आध्यात्मिक निष्ठाओं के आधार पर सभी धर्मों का समन्वय हो सकेगा । इसमें भी कई एक सवाल उठते रहे हैं । किसीने पूछा कि कया मृत्यु के बाद भी जीवन की अखण्डता मानने की जरूरत है? कोई एक बात के लिए ऐसा कहेगा, तो कोई दूसरी के लिए। परन्तु मुझे लगता है कि इन पाँच-छह तत्त्वों के आधार पर सभी धर्मों का समन्वय करना सम्भव है। और इसकी सचमुच जरूरत है। एक काल में प्रस्थानत्रयी का समन्वय करके हमारा निर्वाह हुआ। आज के जमाने की सर्व-धर्म-समन्वय करने की जरूरत महसूस हुई है। समन्वय के लिए धर्म-विचारों का दृढ़भाजक - गुरुत्तम साधारण अवयव निकालना पड़ेगा। ऐसा करने से शुद्ध अध्यात्म हाथ लगेगा और विज्ञान-युग में यही काम में आयेगा। ऐसा दृढ़भाजक निकालने का प्रयत्न मैंने किया है। इसके आधार से समन्वय हो सकेगा।



१९. धर्म-सम्प्रदाय कालबाह्य

मैं ऐसा मानता हूँ कि अब राजनीति और सम्प्रदाय के दिन खत्म हुए। उन्हें अब जाना होगा और इनके स्थान पर विज्ञान और अध्यात्म आयेंगे। विज्ञान अब पेरीकियल पोलिटिक्स (संकीर्ण राजनीति), पार्टी पोलिटिक्स (पक्षीय राजनीति) और नेशनल पोलिटिक्स (राष्ट्रीय राजनीति) को नहीं सहेगा। इन सब बातों को अब जाना ही होगा। इस प्रकार की राजनीति अब आउटडेटेड - कालबाह्य हो गयी है। अब इन्हें जाना ही है।

जब मैं इस प्रकार सोचने लगा, तब एक दूसरी बात भी मेरे ध्यान में आयी कि राजनीति के साथ-साथ धर्म-सम्प्रदायों को भी जाना पड़ेगा। यह सही है कि एक जमाने में सम्प्रदायों ने अच्छा काम किया। अस्त-व्यस्त लोगों को इन धर्म-सम्प्रदायों ने इकट्ठा किया। लेकिन एक जमाने में जो जरूरी सिद्ध हुआ था वही आज विघ्नरूप बन बैठा है। आज विज्ञान समस्त दुनिया को करीब ला रहा है, तो धर्म-सम्प्रदाय उसे तोड़ रहे हैं। जब तक पौधा छोटा हो, तब तक घेरा उसका रक्षण करता है। किन्तु जैसे-जैसे पौधा बढ़ने लगता है, वैसे-वैसे वही घेरा रुकावट बन जाता है। तब उस घेरे को तोड़ना ही पड़ता है। नहीं तो घेरा पौधे को खा जायगा। यही हाल आज सम्प्रदायों का है। इसलिए सम्प्रदायों को अब बिदा होना है। आज तो सम्प्रदाय मनुष्य-मनुष्य के बीच खाई खड़ी करता है और एक सम्प्रदाय का दूसरे सम्प्रदाय से झगड़ा खड़ा करता है। इसलिए उन्हें जाना ही है।

ऐसी दो बातें मेरे ध्यान में आयीं कि राजनीति और धर्म-सम्प्रदायों के दिन अब लद चुके हैं। पहली बात जल्दी ध्यान में आयी, किन्तु धर्म के प्रति मेरे मन में जरा आसक्ति होने से धर्म-सम्प्रदायों को भी जाना होगा, यह बात एकदम ध्यान में नहीं आयी। इसमें थोड़ा समय लगा। इसका आरम्भ थोड़ी विचित्र रीति से कश्मीर में हुआ। ऐसे तो पहले एक-दो बार पंजाब में भी मैंने यह बात की थी, किन्तु मुख्य रूप से यह कश्मीर में मेरे ध्यान में आयी।

कश्मीर में मुसलमानों के बीच घूमना-फिरना हुआ। मैंने उनको कहा कि देखो भाई, वेद-कुरान वगैरह जैसे हैं वैसे किसी ग्रंथ को मैं सिर पर उठाने को तैयार नहीं। इसमें जो कुछ सार होगा उतना ही ग्रहण करूँगा। बाकी सभी ग्रंथ मेरे लिए बोझ बन जायेंगे।



वहाँ के मुसलमानों को यह बात पसन्द आयी। मुझ पर ऐसा असर पड़ा कि कश्मीर के मुसलमान ठण्डे दिमाग के हैं, सौम्य स्वभाव के हैं। वहाँ सर्वत्र सूफी धर्म का प्रचार है। धर्म-ग्रंथों का सिर्फ सार ग्रहण कर लेना है। ऐसी बातों का उन्होंने कोई विरोध नहीं किया।

वहाँ कश्मीर में मैं इसके साथ-साथ दूसरी बात भी करने लगा। मैंने विशेष रूप से कहना शुरू कर दिया कि अब धर्म-पंथों और सम्प्रदायों को जाना है। मैं तब 'रिलिजन' और 'मजहब' शब्द का इस्तेमाल करता था। 'धर्म' या 'दीन' शब्द का उपयोग नहीं करता था। 'दीन' तो ईश्वर-निष्ठा है और 'धर्म' है धारण करनेवाला। इसीलिए मैं कहता था कि मैं दीन का या धर्म का निषेध नहीं करता। मैं तो पंथ, मजहब और रिलिजन का निषेध करता हूँ। पंथ, मजहब वगैरह को अब जाना है।

तो कश्मीर में ऐसी कई एक बातें मेरे ख्याल में आयीं। इसीमें से लोकनीति का विचार निकला। जब यह ध्यान में आया कि राजनीति और सम्प्रदाय दोनों को जाना है तो लोकनीति का विचार स्पष्ट हुआ।

मेरा मानना है कि विज्ञान-युग में मजहब को और सम्प्रदायों को स्थान नहीं है। व्यक्ति को सम्प्रदायों से ऊपर उठना है और मानव-धर्म का विकास करना है। धर्म पचासों नहीं हो सकते। मनुष्यों के लिए एक ही धर्म हो सकता है और वह है मानव-धर्म ! मानव-धर्म से ही अब व्यक्ति और समाज आगे प्रगति करेंगे। मनुष्य अब अलग-अलग धर्म-सम्प्रदायों में बँधे रहने के बजाय सभी धर्मों का सार ग्रहण कर लेगा और इसमें से मानव-धर्म पनपेगा। अध्यात्म यानी सभी धर्मों का सार। अब सम्प्रदाय नहीं, अध्यात्म चलेगा।



२०. सही धर्म की स्थापना अब विज्ञान-युग में होगी

मनुष्य का मन सिर्फ व्यक्तिगत ही नहीं, सामूहिक भी है। जैसे व्यक्ति का अपना मन है, वैसा पूरे समाज का भी एक सामूहिक मन होता है। यह सामूहिक मन कभी बदलता भी रहता है। किसी जमाने में सामान्य समाज का मन एक प्रकार से काम करता था, ऐसा देखा जाता है। पुराने जमाने में आज के जैसे सन्देश पहुँचाने के या वाहन-व्यवहार के तेज गतिवाले साधन नहीं थे। एक देश से दूसरे देश में समाचार पहुँचते भी सालों लग जाते थे। फिर भी देखा जाता है कि समस्त पृथ्वी पर मनुष्य जहाँ-जहाँ फैला हुआ था, वहाँ मनुष्य का मन करीब एक ही प्रकार से काम करता रहा है।

आज से दो-ढाई हजार साल पहले के जमाने का सोचेंगे तो हमें पता चलेगा कि उस समय भारत में वैदिक, बौद्ध और जैन-धर्म की विचारधारा चल रही थी। एक प्रेरणा ऐसी काम कर रही थी कि जिसका मूल स्रोत बुद्ध और महावीर बने। इन्होंने धर्म-संस्थापना की। लगभग इसी कालावधि में चीन में भी लाओत्से, कन्फ्युशियस वगैरह 'ताओ' के बारे में विचार कर रहे थे, जिसके कारण वहाँ भी धर्म-संस्थापना हुई। अर्थात् चीन के-लोगों को भी उसी समय ऐसी ही धर्म-पिपासा हुई थी, जैसी कि यहाँ हिन्दुस्तान में, यद्यपि चीन और हिन्दुस्तान तब एक-दूसरे के बारे में थोड़ा-सा या तो बहुत कम जानते होंगे।

उसी काल में हमें ईरान और पलेस्टीन में भी ऐसी ही प्रेरणा के दर्शन होते हैं। ईरान में जरथुष्ट्र, मिस्र में मूसा और पलेस्टीन में ईसामसीह, जिन्होंने पारसी, यहूदी और क्रिश्चन धर्मों की स्थापना की। यानी उस जमाने में करीब दो सौ, तीन सौ, पाँच सौ साल की कालावधि के भीतर दुनिया के सभी देशों में धर्म-संस्थापना का कार्य हुआ।

आखिर चारों ओर, सर्वत्र सभी मनुष्यों को धर्म-संस्थापना की एक-जैसी प्रेरणा कैसे हुई? इसका जवाब यह हो सकता है कि व्यक्ति के मन के जैसा समाज का मन भी परमात्मा से प्रेरणा पाता है। एक अव्यक्त हवा सर्वत्र फैल गयी थी। इसका कारण सर्व-अन्तर्यामी, सर्वप्रेरक एक ही परमेश्वर हो सकता है। हाँ, परमेश्वर पसन्द न हो तो हम ऐसा कह सकते हैं कि समस्त दुनिया की



विवेक-शक्ति सभी को एक जैसी प्रेरणा देती है। परमेश्वर कहें याविवेक-शक्ति कहें, मुख्य बात यह है कि एक काल-खण्ड की अवधि में पृथ्वी पर सर्वत्र धर्म-संस्थापना की प्रेरणा फैल गयी थी और इसीसे अलग-अलग धर्मों की स्थापना हुई।

मेरा तो कहना है कि यह तो मात्र नीव पड़ी है, मकान बनना बाकी है। ईश्वर पर श्रद्धा, अलग-अलग प्रकार से उसकी उपासना, यह धर्म की बुनियाद है। इस बुनियाद पर जब मानव-धर्म का मकान खड़ा होगा, तब धर्म-संस्थापना का कार्य पूरा हुआ ऐसा कहा जायगा।

अब तक धर्म की स्थापना ही नहीं हुई है। आज हम जिसे धर्म कहते हैं वह यथार्थ में धर्म नहीं है, पंथ है। तुकाराम ने कहा है, '**प्रथम पाऊली पावविला पंथ**' अर्थात् पहला कदम रखने के लिए ही सब पंथ निर्मित हुए हैं। हिन्दू-पंथ, मुसलमान-पंथ, ख्रिस्ती-पंथ, जैन-पंथ, बौद्ध-पंथ, पारसी-पंथ, सिक्ख-पंथ इत्यादि अनेक पंथ खड़े हुए हैं। छोटे बच्चे को चलना सिखाना होता है तो एक-एक कदम आगे बढ़ना सिखाना होता है, उसी प्रकार धर्म का पहला कदम रखने के लिए ये सब पंथ हैं। जब तक सूर्योदय नहीं होता तब तक थोड़ा प्रकाश रहे इसलिए छोटे-छोटे दीपक जलाते हैं, वैसे ही ये सब पंथ हैं। हमें इससे काफी आगे जाना है।

आज तक ये सभी पंथ श्रद्धा और मानसिक भूमिका पर आधारित रहे। अब हमें विज्ञान की भूमिका के आधार पर धर्म-संस्थापना करनी है और यही यथार्थ-धर्म होगा। कइयों को शंका है कि विज्ञान बढ़ने से धर्म का क्या होगा? विज्ञान के सामने धर्म नहीं टिकेगा। विज्ञान के आविष्कार से धर्म लुप्त होगा। लेकिन मुझे भरोसा है कि विज्ञान जैसे-जैसे बढ़ता जायगा, तब इसके सामने सिर्फ धर्म ही टिकेगा, अधर्म नहीं। विज्ञान के कारण दुनिया का स्पष्ट रूप ध्यान में आता जायगा और मनुष्य की भावना व्यापक होती जायगी। ऐसी व्यापक भावना ही तो धर्म है, संकुचित भावना अधर्म है। विज्ञान-युग में व्यापक भावना ही टिक पायेगी, संकुचित नहीं। अतः मेरा पक्का विश्वास है कि तेज गति से धर्म-विचार फैलेगा। विज्ञान की भूमिका पर यथार्थ-धर्म की स्थापना होगी।



विज्ञान के इस जमाने में अब अलग-अलग धर्म के जो असार तत्त्व हैं; अज्ञान के अंश हैं, वे विज्ञान के कारण निकल जायेंगे, जलकर भस्म होंगे और हरएक धर्म का जो सार-तत्त्व है, शुद्ध अंश है, वह प्रकाशित होकर प्रकट होगा। सब कुछ बुद्धि की कसौटी पर कसा जायगा। आज तक सभी धर्मों का मुख्य आधार, खासकर श्रद्धा रही है। तो अब श्रद्धा के साथ-साथ वैज्ञानिक आलंबन भी मिलना चाहिए।

बालक जब छोटा रहे, तब माता-पिता पर श्रद्धा रखकर चले, लेकिन जैसे-जैसे वह बड़ा होता जायगा, वैसे-वैसे माता-पिता की बातों को अपनी बुद्धि की कसौटी पर कसता जायगा और उस कसौटी से जो ठीक नहीं उतरेगा, उसे स्वीकार करने से इन्कार करेगा। इसी प्रकार अब श्रद्धा के आधार पर धर्म नहीं चलेगा। उसको अब विज्ञान का आधार होगा। ऐसा करते-करते अधर्म पूर्णतया घटता जायगा और यथार्थ-धर्म उत्तरोत्तर उज्ज्वलतर बनता जायगा।

विज्ञान की कसौटी पर सही उतरनेवाला, मानसिक कल्पना-कामना इत्यादि से ऊपर उठा हुआ, दुनिया के सभी भेद-भावों को मिटा देनेवाला, उपासना वगैरह विविधताओं में भी एकरूपता देखनेवाला धर्म ही अब इस विज्ञान-युग में टिक सकेगा और वही यथार्थ-धर्म होगा। तभी सही धर्म-संस्थापना हुई ऐसा माना जायगा। आज तक जो कुछ हुआ है, वह तो धर्म की दिशा में प्राथमिक कदम के समान ही है। आत्मज्ञान का ठीक-ठीक विकास हुआ है। अब हमें विज्ञान और आत्मज्ञान के दोनों पंखों से उड़कर धर्म-संस्थापना करनी है। आज दुनिया में सर्वत्र ऐसी ही प्रेरणा काम कर रही है, ऐसा स्पष्ट दिखाई दे रहा है।



२१. सेक्युलर स्टेट का अर्थ

सेक्युलर स्टेट के बारे में काफी गलतफहमी फैली हुई है। मेरा ऐसा मानना है कि बहुत सारी गलतफहमियाँ शब्दमूलक होती हैं। उपयुक्त शब्द का इस्तेमाल न किया गया हो तो भी गलतफहमियाँ खड़ी होती हैं। और एक विदेशी शब्द को लेकर ज्यादा गलतफहमी हुई है! हमारे यहाँ कुछ लोग सभी चिंतन अंग्रेजी में ही करते हैं। हमारी धरती से उसका सम्बन्ध नहीं होता। फिर इसका भाषान्तर करना पड़ता है। और किसी भी भाषा का भाषांतर दूसरी भाषा में बिलकुल ठीक-ठीक नहीं होता। इसलिए विदेशी शब्द यथार्थ भाव व्यक्त नहीं कर पाता। हमारी भूमि की संतानों को समझने के लिए हमारी भूमि का ही शब्द चाहिए।

'सेक्युलर' का अर्थ धर्मविहीन तो हो ही नहीं सकता। उसे धर्मातीत भी नहीं कह सकते। धर्म के बाहर अथवा धर्म के साथ जिसका कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसा भी नहीं कहा जायगा। क्योंकि धर्म के जो अनेक लक्षण हैं, उसके बिना न तो समाज का धारण-पोषण होगा, न ही व्यक्तिगत जीवन की उन्नति होगी।

सेक्युलर स्टेट में आध्यात्मिक मूल्यों का इन्कार नहीं। हमारे राज्य का तो मुद्रालेख ही **सत्यमेव जयते** रखा है। तो सेक्युलर का क्या अर्थ करेंगे? मैंने 'वेदान्ती' ऐसा अर्थ किया है। हमारा राज्य 'वैदिक' नहीं होगा, 'वेदान्ती' होगा। वेदान्त में कोई उपासना का निषेध नहीं, आग्रह भी नहीं। वैसे तो वेद भी सभी उपासनाओं के प्रति समान भाव से देखता है। फिर भी वेदान्त में तो अपनी खुद की कोई उपासना ही नहीं रखी गयी, तो जब हम सेक्युलर स्टेट यानी वेदान्ती राज्य, ऐसा कहेंगे तो थोड़ा अर्थ समझ पायेंगे। यह राज्य धर्म-निरपेक्ष राज्य होगा। किन्तु धर्म-निरपेक्ष का अर्थ धर्महीन नहीं। यह असाम्प्रदायिक है, किसी भी विशेष सम्प्रदाय से जुड़ा नहीं है। लेकिन धर्महीन राज्य हर्गिज नहीं है।

'धर्म' एक व्यापक शब्द है। हमारे देश में प्राचीन काल से, वेद से लेकर आज तक, सातत्य से यह 'धर्म' शब्द चला आ रहा है। इसके लिए किसी भी भाषा में समुचित पर्यायवाची शब्द नहीं मिलता है। 'धर्म' शब्द इतना विशाल और व्यापक है कि इसकी सभी अर्थ-छायाएँ प्रकाशित



करनेवाला शब्द मैंने आज तक दूसरी किसी भाषा में नहीं देखा । सभी अर्थ तो छोड़ दीजिये, किन्तु इसके मुख्य अर्थों का वहन कर सके, ऐसा भी शब्द मुझे नहीं मिला । इसलिए यह है तो संस्कृत शब्द, फिर भी मराठी, हिन्दी, गुजराती, सभी भाषाओं में 'धर्म' शब्द का ही उपयोग किया जाता है।

धर्म में बहुत सारी बातें होती हैं । आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध, ऐहिक जीवन और इसकी समाप्ति के बाद का जीवन - ये सब धर्म के अन्तर्गत समाविष्ट हैं। धर्म का एक हिस्सा मृत्यु के बाद के जीवन का है, जहाँ आत्मा-परमात्मा वगैरह बातें हैं । यह हिस्सा राज्य से ताल्लुक नहीं रखता। इहलोक का व्यवहार, सत्य, प्रेम, त्याग आदि के सिद्धान्त यह धर्म का दूसरा हिस्सा है । इसका सम्बन्ध राज्य से है। राज्य सच पूछें तो इन सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए । इस अर्थ में हरएक सरकार धार्मिक सरकार होनी चाहिए। धर्म-निरपेक्ष राज्य भी वास्तव में धर्म-सिद्धान्तों का अनादर तो नहीं कर सकेगा । इसलिए सेक्युलर स्टेट का अर्थ धर्म-विहीन राज्य, ऐसा कदापि नहीं होगा। यह अ-साम्प्रदायिक राज्य है। यानी किसी एक सम्प्रदाय के साथ जुड़ा हुआ राज्य नहीं है । कोई एक राज्य-मान्य धर्म नहीं है। सभी धर्मों को यहाँ पूरी स्वतंत्रता है, इतना ही 'सेक्युलर' का अर्थ है। 'सेक्युलर' का अर्थ धर्म-विहीन हर्गिज नहीं है।



२२. आध्यात्म-क्षेत्र में भारत का योगदान

अध्यात्म यानी क्या? अध्यात्म उसे कहते हैं, जिसके द्वारा ब्रह्माण्ड को अपने में पहचाना जा सके। ब्रह्माण्ड के स्वरूप का और उसके कर्ता की थाह मिलना सम्भव नहीं। वह अत्यन्त व्यापक और सूक्ष्म है। फिर भी इसकी पहचान का प्रयत्न कर सकते हैं। प्रयत्न बाहर से भी कर सकते हैं और अन्तर्निरीक्षण से भी कर सकते हैं। 'फिजिक्स' (भौतिकशास्त्र) विश्व का बाह्य रूप समझने में मदद करता है। मेटाफिजिक्स (अध्यात्म-शास्त्र) विश्व का आन्तरिक रूप थोड़ा-सा बताता है।

इन दोनों प्रकार की खोज पहले से चली आ रही है—बाह्य सृष्टि की खोज और आन्तरिक सृष्टि की खोज। कइयों का झुकाव बाह्य सृष्टि की खोज की ओर रहता है और कइयों का आन्तरिक खोज की ओर। दुनिया में सर्वत्र दोनों प्रकार की रुचि के व्यक्ति मिलेंगे। सामान्यतः एक ऐसी मान्यता है कि एशिया मायनर से लेकर ब्रह्मदेश-(नाम भी शानदार है - ब्रह्मदेश !) क्षेत्र में आन्तरिक खोज पर विशेष ध्यान दिया गया और दूसरे क्षेत्रों में सृष्टि की ओर। लेकिन यह सच नहीं। प्राचीन माने गये देशों में भी ऐसे तो कम ही व्यक्ति थे, जिन्होंने आन्तरिक खोज की। वास्तव में यहाँ भी वैज्ञानिक खोजें ही ज्यादातर हुई हैं। कृषि की खोज, अग्नि की खोज, पशु-पालन की खोज, पत्थर-धातु वगैरह के औजार बनाने की खोज, गणितशास्त्र, अंकगणित, खगोलशास्त्र, वगैरह खोजें - ये सभी वैज्ञानिक खोजें ही हैं। आज जो ऐसी मान्यता फैली है कि वैज्ञानिक मनोवृत्ति पश्चिम में है, इसका कारण यह है कि आधुनिक युग में जो खोजें हुईं वे अधिकतर सृष्टि के विषय में हुईं और वे पश्चिम में ज्यादा हुईं, पूर्व में ज्यादा नहीं हुईं।

यह भी समझ लेना चाहिए कि इन दोनों प्रकार के शास्त्रों से पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता। उनसे ब्रह्माण्ड के स्वरूप की और इसके कर्ता की पूरी थाह मिलना सम्भव नहीं। वैज्ञानिक खोज के आधार से मनुष्य चन्द्रमा पर पहुँचा। लेकिन यह बिल्कुल मामूली बात मानी जायगी। आकाश में इतने नक्षत्र, तारे, ग्रह हैं कि इन सभी पर पहुँचना सम्भव नहीं। कई तो इतने दूर हैं कि उनकी प्रकाश-किरणें यहाँ पृथ्वी तक पहुँचने में सालों लग जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि विज्ञान द्वारा



हुई खोजों से, अर्थात् बाह्य विश्व में हुई खोजों द्वारा ब्रह्माण्ड और उसके कर्ता के बारे में बहुत ज्यादा ज्ञान नहीं प्राप्त होगा।

वास्तविकता यह है कि जो कुछ सृष्टि में है, ब्रह्माण्ड में है, वही सब पिण्ड में भी है। और जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है। किन्तु जो ब्रह्माण्ड में है, वह तो बहुत दूर है। इतना दूर कि उसकी थाह पाना लगभग असम्भव है और इसका कर्ता कौन, यह समझना तो इससे भी दुर्लभ है। इसीलिए उसे समझने का सरल मार्ग है, उसे पिण्ड में पहचानना। यही अध्यात्म है।

पिण्ड में देखना यानी भीतर देखना और सृष्टि में देखना यानी बाहर देखना। सृष्टि में देखने-सुनने की काफी सुविधाएँ हैं। कान है, आँखें हैं और मदद के लिए बहुत सारे वैज्ञानिक उपकरण भी उपलब्ध हैं। ऐसी सुविधा पिण्ड में देखने के लिए नहीं है। एक्स-रे द्वारा अन्दर देखने का विज्ञानियों ने थोड़ा प्रयत्न किया, किन्तु इससे तो सिर्फ देह के भीतर के अंग-उपांग ही दिखायी देते हैं। भीतर की थाह नहीं मिलती। पूरे पिण्ड की जानकारी विज्ञान को नहीं हुई है। तो अध्यात्म के द्वारा पिण्ड को पहचानने का प्रयत्न करना होगा।

हम यदि पिण्ड को समझ लें तो बहुत सारा काम हो जायगा। इसके लिए अध्यात्म-विद्या निरंतर प्रयत्नशील रही है। इसके मुख्य चार मार्ग हैं:

(१) **ज्ञानमार्ग** : इसमें जानकारी प्राप्त करनी होती है। निरीक्षण आदि इसमें समाविष्ट है। जैसे कि स्वप्न किस विचार से या किस घटना से सम्बन्धित था, यह सोचना आदि। (२) **कर्ममार्ग** : इसमें पिण्ड का सदुपयोग करने की बात है। जानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, चित्त, बुद्धि वगैरह से उत्तम काम लेना और इन्हें शुद्ध करते जाना। (३) **योगमार्ग** : अनेक प्रकार से अपने पर नियंत्रण रखना। इससे साक्षीरूप रहकर पिण्ड को पहचानना शक्य होता है। (४) **भक्तिमार्ग** : इसका तथ्य है, बाहर से मदद लेना। सत्संग, प्रार्थना, सद्ग्रंथ वगैरह की मदद लेकर नम्रभाव से शक्ति प्राप्त करना।

अध्यात्म समझने के लिए इन चारों मार्गों से गुजरना पड़ेगा और इन चारों मार्गों की खेती हमारे यहाँ काफी हद तक हुई है। किन्तु बीच के ४००-५०० सालों का एक ऐसा कालखण्ड गया



कि हमारे यहाँ विज्ञान और अध्यात्म के क्षेत्र में खासकर कुछ नया काम नहीं हुआ। लेकिन अब आधुनिक युग में हमारे यहाँ अध्यात्म के क्षेत्र में चार उल्लेखनीय खोजें हुई हैं। इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

(१) सर्वउपासना-समन्वय: सभी धर्मों के बीच समन्वय की और सभी उपासनाओं के समन्वय की एक नयी दृष्टि भारत में प्रकट हुई। इसका रामकृष्ण परमहंस द्वारा उद्गम हुआ माना जायगा।

(२) अधिचित्त-आरोहण: यानी चित्त के ऊपरी स्तरों में जाकर, परमात्मा की अनुभूति पाकर, फिर से नीचे उतरकर उस अनुभूति में समस्त विश्व को लपेटना और विश्व को ऊपर के स्तर पर चढ़ाना, ऐसा एक दर्शन यहाँ मिला। इसका उद्गम तो नहीं, परन्तु विशेष प्रकाशन आरविंद द्वारा हुआ, ऐसा माना जायगा।

(३) सत्याग्रह-दर्शन: आज तक आध्यात्मिक तत्त्व ऊपर के स्तर में थे। ध्रुव-तारे जैसे ध्येय-रूप थे और आज भी हैं। लेकिन उसका रोजबरोज के व्यवहार से भी सम्बन्ध है, इसका अनुसरण किया जा सकता है, जीवन के प्रत्यक्ष क्षेत्र में वह जोड़ा जा सकता है—यह जो सत्याग्रह-दर्शन कहलाता है, इसका उद्गम तो नहीं, किन्तु प्रकाशन गांधीजी द्वारा हुआ। इस सन्दर्भ में गांधीजी का एकादशव्रत का चिन्तन 'मंगल प्रभात' इस युग का नया अध्यात्म है। वह एक आध्यात्मिक पुस्तक है।

(४) करुणामूलक साम्य: जो चौथी चीज निकल रही है, वह है साम्ययोग। यह आज के जमाने की माँग है। साम्ययोग की प्रेरणा आज दुनिया में चारों ओर दिखायी देती है। ब्रह्म यानी परम साम्य, समत्व, ऐसी व्याख्या ब्रह्म की गीता ने की है। इससे बढ़कर अच्छी व्याख्या ब्रह्म की दूसरी कोई नहीं हो सकेगी। विज्ञान के कारण आज इस साम्य को हम प्रत्यक्ष कर सकते हैं। मूर्तिमंत कर सकते हैं। सगुण-साकार कर सकते हैं। करुणामूलक साम्य का यह नया दर्शन सामने उपस्थित हुआ है।

मैं मानता हूँ कि अध्यात्म-क्षेत्र में भारत की आधुनिक युग की ये चार विशेष देन हैं।

